

श्रीधन्वन्तरि ग्रन्थावली नं० ६६

क्षयादौ

अर्थात्

क्षयरोग और उस की चिकित्सा

जिसमें क्षय सम्बन्धी नवीन और प्राचीन
विचारों का सन्निस्तार वर्णित है ।

लेखक:—

पंडित हरिशंकर जी शर्मा वैद्यराज
हरदुआगंज ।

न्यू एम्पेडक 'बुक्स' प्रकाशक :-

वैद्यराज राधावल्लभ
सम्पादक आरोग्यसिन्धु ।

मास्टर रघुनन्दनलाल गुप्त के प्रबन्ध से
यू० पी० आर्ट मिटिंग वर्क कासगंज में
छपकर प्रकाशित हुआ ।

प्रथमवार
१००० प्र०

जगदरी सन् १९१७

मूल्य प्रति
पु० ॥२॥

इस पुस्तक का सर्वाधिकार प्रकाशक ने स्वाधीन रखवा है ।

रक्त

इस पुस्तक में रक्त की उपयोगिता, रक्त की बनावट, रक्त कैसे बनता है ? रक्त का संचालन, और रक्त सम्बन्धी अग प्रत्यंग का वर्णन है मूल्य ३/ प्रति ।

पता-मैनेजर धन्वन्तरि पुस्तकालय नं० १

पोस्ट विजयगढ़ ज़िला अलीगढ़

भूमिका

हिन्दी भाषा में केवल नवीन पश्चिमीय विचारों को ही बतलाने वाली क्षयरोग, सम्बन्धी दो एक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। नवीन और प्राचीन उभय विचारों को स्पष्ट समझाने वाली क्षय सम्बन्धी पुस्तकों का अभाव हमारे चित्त में बहुत दिनों से खटकता था कानपुर के वैद्यसम्मेलन में क्षय रोग पर उत्तम निबन्ध लिखने वाले को पुरस्कार देने का ध्यान भी इस ही लिये दिया था और आरोग्यसिन्धु मासिक पत्र में क्षय सम्बन्धी लेख मात्ता निकाली थी। लेख मात्ता को गुण ग्राही वैद्यों और पत्र सम्पादकों ने सामयिक उपयोगी और विचार पूर्ण बतलाया, तब से स्वयं इस विषय पर स्वतन्त्र निबन्ध लिखने का विचार किया।

हमने क्षय रोग और उक्त की चिकित्सा—नामक निबन्ध लिखा और उसही अक्षर पर हमारे मित्र पं० हरिशंकर जी शर्मा वैद्यराज ने वैद्य सम्मेलन मथुरा के लिये क्षयादर्श नामक निबन्ध लिखा। सम्मेलन के पश्चात् वैद्यराज जी ने हमारे पास उसे प्रकाशित होने के लिये भेजा " एक और एक ग्यारह " वाली कहावत चरितार्थ हुई। दोनों पुस्तकों के विचार उत्तम समझे गये। इस लिये उपर्युक्त वैद्यराज जी के निबन्ध की प्रधानता रख हम इस क्षयादर्श नामक निबन्ध को प्रकाशित करते हैं और वैद्यराज जी को इस परिश्रम के लिये धन्यवाद देते हैं।

हिन्दीसाहित्य में ऐसी पुस्तकों की कैंसी आवश्यकता है इसे वैद्य महाशय अच्छी तरह जानते हुये भी अपनी उदासीनता दिखाते हैं। हिन्दी भाषा में नवीन शैली से लिखी हुई पुस्तकों की मांग बहुत कम होती है हमने छोटी २ ऐसी पुस्तकें प्रकाशित कर इस बात का अच्छी प्रकार अनुभव कर लिया है तो भी हम अपने पाठकों के सामने इस निबन्ध को रखते हैं और आशा करते हैं कि वैद्य महाशय इसे अपना हम को उत्साहित करेंगे।

इस पुस्तक में स्रष रोग के कारण, स्वरूपभेद, कीटविज्ञान, दोषविज्ञान, चिकित्सा आदि सभी उपयोगी विषयों का समावेश किया गया है। वैद्य और सर्व साधारण दोनों इसे पढ़कर लाभ उठा सकते हैं। यदि गुण प्राप्ति वैद्य इसे स्वीकार करेंगे तो हिन्दी भाषा में वैद्यक सम्बन्धी अन्य उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की जायेंगी।

ज्ञाना प्रार्थना—ज्ञानादर्श में यत्र तत्र कार्यकर्त्ताओं की इसी सावधानी से अशुद्धियां रद्दगर्ह हैं जिन का हम को पश्चात्ताप है। पाठक सुधार कर पढ़ें।

राधावल्लभ वैद्यराज ।

॥ श्रीः ॥



क्षयादश

अर्थात्

क्षयरोग ❀ उसकी चिकित्सा



❀ मंगला चरणम् ❀



यः प्रागादं गदशमार्थं मथर्ववेदो ।

पाङ्गं स्वयं निगममायुष आततान ॥

भाविप्रजा कुशल कामनया पुरैव ।

तं वेधसं परम कारुणिकं नमामि ॥



क्षयरोग की भयंकरता

और वैद्यों का कर्तव्य

क्षयरोग कैसा भयंकर है ! जनसमुदाय का नाश करने वाली
कैसी महाव्याधि है ! बड़े २ धैर्य शालियों के धैर्यको क्षय करने

वाली, अभिमानियों के मान को मर्दन करने वाली कैसी घोर यातना है। इस रोग से प्रति वर्ष ३० लाख मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं। यह संवत्स्र युग विना जिजे पुण्यों के समान इस विश्व वाटिका में अपने यशस्वी सौरभ के फैलाये बिना ही खज बसते हैं। तब ही तौ इसे रोगराई कहते हैं। राज यद्मा कह कर पुकारते हैं ॥

इस रोग का आधिपत्य भारत वर्ष में ही नहीं किन्तु संसार में चमकते हुए अमेरिका, जापान, जर्मनी, और इंग्लैंड आदि देशों में भी है। परन्तु वहां के पुरुष भारत वासियों के समान बख्खदय नहीं हैं जो अपने देश वासियों की अकाल मृत्युओं की ओर किञ्चिन्मात्र ध्यान न देकर घोर निद्रा में पड़े सोते रहते हों। शोक है कि महर्षियों के दिव्य ज्ञान से निकजे हुए सदुपायों के विद्यमान रहते हुए भी हम कुछ भी उद्योग नहीं करते। पश्चिमीय देशों में इस रोग पर विचार करने वाली अनेक सभायें स्थापित हैं। वहां के विद्वान अपने महत्त्वंक बल से इस विषय की खोज में पूर्ण उद्योग करते हैं। प्रति वर्ष यड़े २ डाक्टर एक स्थान पर सम्मिलित हो इस महारोग के सम्बन्ध में अपना २ मत और अनुसन्धान प्रकाशित करते हैं। इस रोग पर विचार करने के लिये कई समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं। इस रोग पर उत्तम निबन्ध लिखने वालों को हजारों रुपयों का इनाम दिया जाता है। थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ कि अमेरिका के वाशिंगटन शहर में सपरोग पर विचार करने के लिये एक महासभा हुई थी। जिन में समस्त देशों से ४५० नामी २ डाक्टर डेजीगेट बनकर पधारे थे। और इस रोग के विषय में यथा सम्भव विचार कर अपने कर्तव्य का पालन किया था। हम को अपने प्रिय वैद्य भाइयों की दशा देखकर यड़ा शोक होता है। हम लोग संसार में मान चाहते हैं। विदेशी चिकित्सकों को अपनी चिकित्सा के सद्गुणों

के परास्त करना चाहते हैं, संसार भरके चिकित्सकों में उच्चासन चाहते हैं, राजाधर्य चाहते हैं चाहते सब कुछ हैं परन्तु करते कुछ भी नहीं केवल अपने पूर्वज विद्यादिगजों की कीर्ति पर ही अभिमान करते हुए अकड़े जाते हैं। हे अश्विनी कुमार, आत्रेय, धन्वन्तरि आदि देवर्षि, महर्षियों के पथानुगामियों ! यदि तुम संसार में कीर्ति चाहते हो तो संसार के सामने अपना प्रभाव दिखाइये। देशभक्ति का अद्भुत लगाकर ज्ञानरूपी नेत्रों को निर्मल बनाइये। तुम्हारा कर्तव्य है कि विदेशी डाक्टरों का अनुकरण कर इस रोग के विषय में पूर्ण विचार करो। प्राचीन ऋषियों का क्या मत है ? वर्तमान संसार के डाक्टर लोगो की क्या सम्मतियाँ हैं ? क्षयरोग की चिकित्सा प्रणाली क्या है ? इत्यादि बातों का विचार करौ। क्षय रोग के कारणों से सर्वसाधारण को परिचिन करौ। जिस से वे अपनी आत्मरक्षा कर सकें। रोग उत्पन्न होते ही सावधान होकर योग्य वैद्य से चिकित्सा करा सकें।



॥ क्षय रोग का नाम करण ॥

वैद्यो व्याधिमा यस्माद् व्याधेर्यत्नेन यक्ष्यते
 स यक्ष्मा प्रोच्यते, लोके शब्दशास्त्र विशारदैः ॥१॥
 राज्ञश्चन्द्रमसो यस्माद्भृदेप कित्तामयः
 तस्मात्तं राजयक्ष्मेति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२॥
 क्रियान्नयकरत्वात्तु क्षय इत्युच्यते बुधैः
 संशोपणाद्रसादीनां शोप इत्यभिधीयते ॥३॥ पु०

क्षयरोग के यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, क्षय, शोष, छाटि कई नाम दौहन नामों से ही जाना जाता है कि यह रोग घड़ा कठिन है और इस का प्रादुर्भाव अति प्राचीन काल से है । तथा इस रोग में धातुओं का क्षय होता है । जिस रोग के कारण वैद्य रोगी द्वारा अधिक सत्कार पावे (यजन किया जावे) उसे शब्द शास्त्रज्ञ यक्ष्मा कहते हैं । पहले यह रोग चन्द्रमा को हुआ था इस से इस का नाम राजयक्ष्मा पड़ा । शारीरिक क्रियाओं का क्षय करता है इस से क्षय, और रसादिक धातुओं के सुप्ताने से शोष कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे कॉन्जम्प्शन (Consumption) अथवा (Phthisis) या टिसिस कहते हैं जिन का अर्थ भी निरन्तर क्षय करने वाला ही है । फ़ारसी में इसे दिक्क या सिज कहते हैं ।

क्षय रोग का सामान्य

विवरण

जिस रोग में शारीरिक धातुओं की कमी होने से शरीर प्रति दिन निर्दल होना आवे उसे क्षय कहते हैं । यह रोग मज्जामूत्रादिकों के वेगों को रोकने, मैथुनादि विषयों से शारीरिक धातुओं के क्षय होने, शक्ति से विपरीत साधन करने, और विषमासन से उत्पन्न होता है । इस रोग के पञ्जे में जुवा अवस्था वाले तथा सुकुमार स्त्री पुरुष प्रायः अधिकता से फँसते हैं । जिन मनुष्यों को दिमारा से अधिक काम पड़ता है, अथवा जो घनिक मादक पदार्थों को सेवन करते हुए विषयासक्त रहते हैं, उनको प्रायः इस रोग का शिकार बनना पड़ता है । यह रोग शनैः रूढ़ीति से बढ़ता है कि रोगी को तथा उस के घर वालों को

प्रकट रूप से रोग बढ़ा हुआ मालूम नहीं पड़ता । जब रोगी चञ्चले फिन्ने में अशक्त होजाता है और रोग असाध्य होकर उसे मृत्युशय्या पर सुजाना चाहता है तब कहीं इस की खबर पड़ती है । डाक्टर जी. डबल्यू. विलसन ने ठीक कहा है कि—

“ Like a serpent in the grass or among stones lying in ambush for its prey; Consumption often begins to do its destroying work before it manifests itself openly. ”

अर्थात् अपनी शिकार की टोह में घास या पत्थर के नीचे छिपे हुए सर्प के समान क्षयरोग भी प्रकट होने से पूर्व ही (शरीर में छिपा हुआ भीतर ही भीतर) शरीर को नाश करने का काम आरम्भ कर देता है । जो मनुष्य रोग की प्रथमावस्था में ही सावधान होकर अपनी पूरी चिकित्सा कराते हैं वेही प्रायः बच जाते हैं । रक्तमांसादिकों के क्षीण होने पर कोई रोगी नहीं बचता ।

क्षयरोग के सामान्य लक्षण ये हैं—रोगी को जल्दी २ लुकाम हों खांसी का ठसका बना रहे, फैंफड़े निर्बल होते जायें, तथा उन में शूल या घाव हो, कन्धों या पसवाड़ों में खिंचाव हो, श्वाय पायों में जलन हो, बहुत खांसने पर थोड़ा कफ निकले किसी २ को कफ की अधिकता हो । कफ के साथ रुधिर की जालिमा अथवा पीव आये, ज्वर की मन्द गर्मी तौ सर्वदा बनी रहे, कभी २ ज्वर वेग से चढ़ाये, रक्तमांसादि धातु बल प्रति दिन क्षीण होते जायें । थोड़े दिन रोगी को आरामसा प्रतीत होकर फिर दौरा होने से पूर्ववत् स्थिति हो जाये । चहरे पर तौ रौनक मालूम देवे किन्तु शरीर दुर्बल होता जाये । विचार शक्ति कम हो ।

क्षय सम्बन्धी कुछ डाक्टरी सिद्धान्त

(१) क्षयी अथवा राजदमा एक पुरानी बीमारी है जोकि फेफड़ों में सूक्ष्म दानों व परमाणु की स्थिति से उत्पन्न होती है। ये परमाणु गोलाकार होते हैं और कभी कभी नंगी धांज से भी देख पड़ते हैं तथा असंख्य होते हैं। यहां तक कि किसी रोगपीडित अंग में तो करोडो पाये जाते हैं और इनहीं की वजह से इस रोग को (Tuberculosis) "ट्यूबर्क्यूलोसिस" कहते हैं। ये कीटाणु ट्यूबर्किलस कहाते हैं। यह छोटासा पर घन जीवी कीटाणु राजदमा का प्रधान कारण समझा जाता है। यह दुष्ट घाव डाल कर न कबल फेंकड़े ही को शनैः शनैः नष्ट करता है बल्कि साथ ही में "टोक्सिन" नामी एक विषैले पदार्थ कोभी उत्पन्न करता है जो प्रति बिरुजाल बिन्हीं का अन्त दायक है ॥

(२) सूक्ष्म दानों यन्त्रों से क्षय के कीटाणु अधिकतर धूक में पाये जाते हैं वे गोल डब्बियों के से स्वरूप वाले होते हैं ॥

(३) क्षयी के परमाणु श्वास के साथ फेफड़ों में या भोजन के साथ आमाशय में पहुंच कर रोग उत्पन्न करते हैं।

(४) किसी मण द्वारा कीटाणु रधिर में पहुंच कर क्षयरोग पैदा करते हैं।

(५) मादक पदार्थों के इस्तेमाल से या अन्य किसी दुर्गुण से निर्धन हुआ शरीर आप कीटाणुओं की उपयुक्त भूमि है।

(६) क्षयरोगी का धूक बेपरवाही से पढ़ा न रहना चाहिये। क्योंकि धूक में असंख्य कीटाणु रहते हैं जो दूसरे मनुष्यों पर आक्रमण करते हैं। धूक या कफ को सूख ने से पहले ही नष्ट कर देना चाहिये।

(७) कल कारखानों तथा अन्य बड़े २ स्थानों में थूक दान रख देने चाहिये जिस में ही सब लोग थूकें और घह थूक जला दिया जावे। क्षयरोगी एक २ जैसी थूक दान रखें। और जरूरत के समय उस में थूक कर जेष में रखें और पीछे साफ़ कर डालें।

(८) पशुओं को भी क्षयरोग हो जाता है वे भी प्रायः क्षयरोगियों के थूक चाटने से बीमार हो जाते हैं। इस से थूकदानों को हिराजत से रखो।

(९) क्षयपीडित माय भैंसों के दूधपीने से क्षयरोग हो जाता है। इसलिये दुध को परीक्षा करके काम में जाना चाहिये।

(१०) क्षयरोग संक्रामक है तथा पुष्टैनी है।

(११) कच्चे दुग्ध में क्षय के असंख्य कीटाणु रहते हैं दुग्ध को झौटा कर पीना चाहिये।

(१२) बहुत से ऐसे रोग हैं जिन से शरीर दुर्बल हो जाता है और पीछे उस में कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं, जैसे न्यूमोनिया, चेचक, खसरा, खांसी, घातशक।

(१३) कुछ ऐसे पेशे हैं जिन से क्षय पैदा होता है जैसे छपाई, सिजाई, पत्थर, लोहे उठाने का काम, पिसाई, हलवाईगीरी, कल कारखानों में धूल का काम।

(१४) राजयचना के प्रधान लक्षण, खांसी कफ, मन्दज्वर, श्वास लेने में तकलीफ़, हृदय में दर्द, रात्रि में पसीना, भूख की कमी, रुधिर, यमन, और क्षीणता है।

(१५) क्षयरोग की कई किस्में हैं जैसे कंठकी क्षयी, हृदयों की क्षयी, बच्चों की क्षयी, खांती की क्षयी, कण्ठमाला क्षयी आदि।

(१६) क्षयरोग यदि नहीं हो तौ बड़े प्रयत्न करने से आराम भी हो सकता है।

क्षय रोग कैसे उत्पन्न होता है ? ।

(डाक्टरी सिद्धान्तों का खंडन मंडन)

क्षय रोग के कारण आयुर्वेदीय ग्रन्थों में बड़े विस्तार से लिखे गये हैं । डाक्टर लोगों ने भी इस रोग के कारण ढूंढने में बड़ा परिश्रम किया है । उनके विचारों से अनेक मनुष्य सहमत हो या न हों परन्तु उन के उद्योग की प्रशंसा सब ही विचार-धान करते हैं । उन्होंने जो कारण ढूंढे हैं वे पर्याप्त नहीं हैं और आयुर्वेदीय शास्त्रों में जितना निश्चित हो चुका है उन का अनुसन्धान अभी वहाँ तक भी नहीं पहुँचा है । डाक्टर लोग एक दूसरे के विचार से परस्पर सहमत भी नहीं हैं । एक के निश्चय को दूसरा प्रबल युक्तियों से खण्डन करता है । क्षयरोग के सम्बन्ध में जो नई शोध हुए हैं उसे हमारे विचार शीघ्र वैदर्श्यों को जानना एक आवश्यकता है । तथा अपने महर्षियों के पुराने सिद्धान्तों को सत्कार के सामने उपस्थित करना भी ठीक कर्म है । हम इस लेख द्वारा पहले पश्चिमीय डाक्टरों के मत तथा उन का खण्डन मंडन दिखलाकर पीछे आयुर्वेदीय सिद्धान्तों को दिखायेंगे । जिस से पाठक जान सकेंगे कि दोनों मतों में कौन उत्तम है । और प्राचीन ऋषियों का दिव्य ज्ञान कितना ऊँचे दर्जे का है ।

1 डाक्टर लोगों की नई शोध यह है कि यह रोग "ट्यूबरिकुलस" नामक कीटाणुओं से उत्पन्न होता है। ये कीटाणु गोजाकार होते हैं। श्वास के साथ फेफड़ों में, अथवा आहार के साथ आमाशय में या किसी घाव के साथ रुधिर में प्रविष्ट होकर क्षय को उत्पन्न करते हैं । क्षय रोग वाले मनुष्य के धूरु और बफ में असंख्य कीटाणु रहते हैं । धूरु और बफ के सूखने पर वे कीटाणु हवा और धूल में मिल रोगी के समीप में रहने वाले पुरुषों के शरीरों में प्रवेश कर जाते हैं । इस से यह रोग संक्रामक भी है ।

यह रोग पुस्तकें भी मालूम पड़ता है । क्योंकि अनेक स्थानों में ऐसा देखा गया है कि पिता के घीमार होने पर काजान्तर में उस के पुत्र को भी यह रोग हुआ है । गायों के कच्चे दूध में भी इस रोग के बीजाणु होते हैं । पशुओं को भी क्षय रोग होता है । क्षय वाली गौ के दूध पीने से वे बीजाणु मनुष्य के आमाशय में पहुंच क्षय रोग उत्पन्न करते हैं ।

बीजाणुओं से क्षय रोग होता है इस बात की नवीन शोध करने वाले जर्मनी के प्रसिद्ध विज्ञान-प्रेता डाक्टर रॉबर्ट कोक (D. Robert Koch) हुए, किन्तु इस शोध से यहाँ के सब डाक्टर सहमत नहीं हैं यहाँ के अनेक विद्वान् डाक्टर बीजाणुज्ञान (थियॉरी) से प्रयत्न विरोध रखते हैं । इन विरोध पक्ष वाले डाक्टरों का कथन भी युक्ति सिद्ध प्रतीत होता है ।

इस प्रश्न की मीमांसा में क्षयरोग के " स्पेशलिस्ट " विद्वान् डाक्टर डेविड चार्क एम. डी ने कहा है कि—

" When Koch discovered the bacillus the medical profession concluded that these germs were the sole and original cause of tuberculosis." But this idea has been found to be practically a complete failure."

जब से प्रोफेसर कोक ने क्षय के बीजाणुओं को देखा तब से डाक्टरों ने इस पर ऐसा निष्कर्ष किया कि ये जन्तु ही क्षय के मूल और मुख्य कारण हैं परन्तु उन का ऐसा मानना केषल निष्फलता रूप ही है,

इस ही प्रकार डाक्टर जे. टी. रोविन्सन, एम. डी. ने कहा है "These so called deadly germs that the political doctors prate so much about are our

friends, they are nature's scavengers, it is a natural method of elimination the throwing out of decayed putrid matter from the system. These germs are a product of disease and not the cause They produce metamorphosis of tissue a form of dead matter, which can be eliminated Of all the wild absurd theories that have ever been imposed upon an intelligent public, the germ theory is most infamous and false

खटपटी और बदमागड फटर जो कीटाणुओं की भयकरता के सम्बन्ध में बहते फिरते हैं वे "जर्म" अथवा जन्तु तो हमारे मित्र हैं, प्रकृति ने उन्हें गन्दगी को साफ करने के लिये बनाया है। क्योंकि मलोरसर्ग करना एक स्वाभाविक है अर्थात् दुर्गन्धि युक्त मल निकलना एक प्राकृत नियम है। ये जन्तु रोग के कारण नहीं हैं किन्तु रोग से उत्पन्न होते हैं (जन्तु रोग को उत्पन्न नहीं करने किन्तु रोग स जन्तु पैदा होते हैं) शरीर क स्नायु और शिगमों को रूपान्तर कर के उनमें से निर्जीव जन्तुओं का जुदा करने हैं, जिस स वे कीटाणु सरलता से शरीर के बाहर निकाले जाते हैं। बुद्धिमान प्रजा का मर्यात करने क लिये जो जगली, मिथ्या और मूर्खता से भरे हुए सिद्धान्त निकाले गये हैं उन सब में जन्तु सम्बन्धी विचार अर्थात् थियारी सब से अधिक धिक्कारे जा' योग है।

अमेरिका क डाक्टर चार्ल्स टार्टेल, एम, डी, का मत है
The world appears to have gone microbe mad
And yet upto the present time in spite of the
vast amount of research that has been going

on it has never been satisfactorily demonstrated that the germ is the cause of disease. It is true that there are certain diseases in which a specific germ is invariably present but in view of the fact that the said germs are present in countless millions of people who never develop the disease.

जन्तुओं के पीछे संसार मूर्ख होगया है ऐसा ज्ञान होता है। जब तक इस के सम्बन्ध में बड़ा विचार होने पर भी सन्तोष जनक रीति से यह सिद्ध नहीं किया गया कि रोग के कारण जन्तु ही होते हैं। यह बात ठीक है कि किसी रोग में एक विशेष प्रकार के जन्तु शरीर में रहते हैं, परन्तु स्वस्थ मनुष्यों के शरीरों में भी वैसे ही असंख्यजन्तु शरीर देखने में आते हैं, उन को यह व्याधि क्यों नहीं सताती। इस सत्य बात को विचारने से यह बात जानी जाती है कि रोग से जन्तु उत्पन्न होते हैं जन्तु से रोग नहीं—उपर्युक्त डाक्टरों के अतिरिक्त और भी अनेक विद्वान् डाक्टर इस के विरुद्ध हैं।

दुग्ध के साथ या अन्य किसी प्रकार के आहार के साथ ये परमाणु शरीर में प्रवेश कर ज्ञय को उत्पन्न करते हैं इस की प्रित क्षमता भी कम नहीं है। उस के सम्बन्ध में जो डाक्टरों का मत है उस का सारांश यह है—संसार में प्रायः सब वस्तुएँ जो कि खाने पीने में आती हैं (जैसे पानी दूध, आहार) इनके साथ ज्ञय के शत्रु या विष मनुष्यों में प्रवेश करता है, यह कहना भी ठीक नहीं है। न इसके सम्बन्ध में कोई अकाट्य युक्ति है। यह सम्पूर्ण विश्व जन्तुमय है ऐसा सब धर्मवाजो मानते हैं। जैन-शास्त्रों में तो आजकल कहे जानेवाले जन्तुओं से भी अमरुप सूक्ष्म जन्तुओं का वर्णन है। शुद्ध से शुद्ध जल और वायु में भी

ये रहते हैं। दुग्ध और मायन में भी इसी स्थिति है। एक छोटे बच्चे भर दूध में कम से कम तीसलाख और अधिक से अधिक एक करोड़ जन्तु रहते हैं। गाय के बिना औटाये दुग्ध में जो जन्तु रहते हैं उनसे क्षय उत्पन्न नहीं होता। यदि उस दूध में क्षयरोगोत्पादक तथा प्रायनाशक जन्तु रहते हैं, तो कहिये असंख्य कीटाणुओं वाले दुग्ध को पैदा करनेवाली गाय ही कैसे जीवित रहसकती है। और दूध के औटाने से क्या सब कीटाणु गए नहीं हो जाते हैं। यदि थोड़े बहुत शेष रहजाते हैं तो क्या वे पुनः नहीं बढ़ सकते। क्योंकि इन कीटाणुओं में बहुत शीघ्र बढ़ने की शक्ति होती है। जन्तुओं को प्रसिद्ध करनेवाले डाक्टर राबर्ट कॉक का भी इस विषय में मत बदल गया और वे अन्त में यह गये कि कैसी ही क्षय वाली गाय का दूध पीने से क्षय रोग उत्पन्न नहीं होता। अतः जो डाक्टर इस मिथ्या भय को दिखाते हैं वे प्रजा को निर्बल बनाते हैं। और बेचारी गायों को निरर्थक हानि पहुंचाते हैं। आहार के साथ गये हुए भी वे कीटाणु क्षय उत्पन्न नहीं कर सकते। क्योंकि आमाशय के "गस्ट्रोक्लजस," में हाइड्रोक्लोरिक एसिड रहता है जिस से अथवा आहार को पचानेवाले अन्य रस से वे नाश हो जाते हैं। यदि आमाशय या अन्तर्द्वियों में कोई ब्रण न हो तो वे जन्तु कोई हानि नहीं पहुंचा सकते।

क्षय रोग पुत्रतैनी भी नहीं है, जैसा कि फिरंग या उपदेश का विष कई पीढ़ी तक रहता है वैसा क्षयरोग का नहीं। किसी कुटुम्ब में जो यह देखा जाता है कि पिता को क्षय होने पर कालान्तर में उस के पुत्र को भी क्षयरोग हुआ है, इसका कारण अन्य ही है। जिस प्रकार प्रायः लम्बे मनुष्य का पुत्र लम्बा, ठिगने का ठिगना, स्वरूपवान का स्वरूपवान होता है, वस ही प्रकार प्रायः निर्बल फफड़ेवाले पिता का पुत्र भी निर्बल फफड़ोंवाला होता है। और प्रायः कुटुम्ब भरके आहार विहार भी समान ही

होते हैं। इस से जिन कारणों से पिता को क्षय रोग पैदा हुआ था उनही कारणों से पुत्र को भी क्षयरोग होजाता है। यदि वह पुत्र सावधान होकर पथ्य से रहे दुराचार और व्यसनों से बचे तो यह रोग कदापि उत्पन्न न हो।

❀ कीटाणु कारणवाद ❀

❀ और आयुर्वेदीय शास्त्र ❀



जिस जिन विशान की पाश्चत्य देशों में भूमि मच रही है, जिस जन्तु विशान के आविष्कर्ता बनके इस धीसर्वी प्रताब्दि में पश्चिमीय डाक्टर अपनी शोध और उन्नति पर अभिमान करते हैं, जिस जन्तु विशान को आधुनिक विद्वान ष्ट्री आश्चर्य भरी दृष्टि से देखते हैं, जिस जन्तुविज्ञान को देख पुरानी चालके रोगों की जांच ढकोसजा बताई जाती है, उस जन्तु विशान से क्या हमारे आयुर्वेदीय शास्त्र शून्य हैं ? क्या सचमुच इस ज्ञान के आविष्कर्ता पश्चिमीय डाक्टर ही हैं ? क्या हमारे पूज्यपाद ऋषियों का ज्ञान हमारी अज्ञानता और अक्षमता से विदेशी विद्वानों के गृहों को, हृदय कमलों को, प्रकाशित नहीं करता ? हम अभिमान पूर्वक कह सकते हैं कि वर्तमान समय का " जन्तुविज्ञान, भारतीय वैद्यकज्ञान का अणु मात्र ही है। आज नहीं कितनी ही शताब्दियों पहले हमारे महर्षि इसे उत्तम रीतिसे जानते थे। वे कंचल जानते ही न थे प्रत्युत इस विषय को उन्हों ने अच्युत प्रकार ऊहा पोह कर के अपने ग्रन्थों में बड़ी अक्षम रीति से प्रदर्शित भी किया है। जिस के प्रमाण अनेक संहिताओं

में आज कल भी पाये जाते हैं। जय वेदों में भी "जन्तु विद्यान," का विस्तृत वर्णन पाया जाता है तथा न मालूम विदेशी लोग किस मुंह से अपने लिये इस छान के उत्पन्न करने वाले मन्त्रा बतलाते हैं। अब भारतीय वैद्यों ने अपने आयुर्वेदीय मंदिर की र्छमाल करनी प्रारम्भ करदी है। उस टूटे फूटे जीर्ण मंदिर में भी बहुतसी सामग्री बची है। इस से इस निरपेक्ष समय में हम अपनी सम्पत्ति को दूसरों से न बचाने देंगे। यह हम मानते हैं कि प्रचीन विज्ञान विना संस्कार किया हीरा था और यत मान समय में उसे हीनकर विदेशी विद्वानों ने प्रकाश युक्त बनाया है। परन्तु उसे छान से निकालने वाले हमारे पूर्वज श्रुति ही थे।

आयुर्वेद के आचार्य्य अनेक स्थानों पर जीवाणु कारणवाद विषयक ऐसे सुन्दर हेतु सूत्र और लिंग सूत्र लिख गये हैं जिन्हें देख कर कोई भी यह नहीं कह सकता कि आयुर्वेदीय चिकित्सा में इस विषय के प्रमाण नहीं हैं। नीचे लिखे हुए शास्त्रीय विचार से विद्वान लोग जान सकेंगे कि आयुर्वेदक कीटाणु कारण वाद से कैसे परिचित थे।

हमारा आयुर्वेद, अथर्व वेद का उपांग वेदों में क्रिमिवर्णन है। उस अथर्व वेद में कीट विज्ञान विस्तार पूर्वक वर्णित है उस में लिखा है कि अनेक प्रकार की कृमियां होती हैं जिन से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, बहुतसी कृमियां दीर्घती हैं और बहुतसी सूक्ष्म होने से नहीं दीर्घती, वे कृमियां मनुष्यों के अन्तर्द्विपां शिर, पीठ आदि स्थानों में रहती हैं। "दृष्टमदृष्टमवृष्टम्," "अन्वाश्रयं शीर्षणमथो पार्श्वरुमीन्," श्वादि अनेक मन्त्रों में कीट विज्ञान भरा पड़ा है।

क्रिमियों के भेद और स्वरूप

क्रिमि वाह्य और आन्तरिक
भेद से दो प्रकार के होते हैं ।

वाह्यों में तिल के बराबर, घाल, और बज्रो में रहने वाले जूझा
लीख आदि हैं । आन्तरिकों में, कफज रक्तज और पुरीयज हैं ।
जिन के स्वरूपादि के विषय में आचार्यों ने लिखा है ।

कफादामाशयं जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः
पृथुवृक्ष निभाः केचित् केचिद्गण्डुपदोपमाः
रुद्ध धान्याकुराकारास्तनु दीर्घास्तथाणवः
श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते
अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुहाः
चुसो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते
रक्तवाहि शिरास्थान रक्तजा जन्तवोणवः
प्रपादावृत्त ताम्राश्च सौक्ष्म्यात् केचिददर्शनाः
केशादा लोमविध्वंसा रोमद्रीपा उदम्बराः
पट् ते कुष्ठैककर्माणाः सहसौरस मातरः ॥

इत श्लोकों का संक्षेप से यह अर्थ है कि कफ से आमाशय
में उत्पन्न हुए क्रिमि कोई मोटे चर्मजता के समान, कोई गंडुप
के समान, कोई धान्याकुर के सदृश कोई जम्बे और कोई सूदम होते
हैं। ये क्रिमि श्वेत और लालरंगवाले हैं। आन्त्रादा, हृदयावेष्ट, महागुद

धुरव, दर्भकुसुम, और सुगन्ध इन के नाम हैं। इस ही प्रकार
 १५३ क्रिमि रक्तवाहिनी शिराओं में रहने हैं, यह बहुत बारीक,
 कई पैरवाले गोल तथा जाल होते हैं। कोई २ इतने बारीक होते
 हैं जो दीख नहीं पड़ते। केशाद, लोमविघ्नसक, रोमहीन,
 बटमर सौरस, और मातर इन नामों से छः प्रकार के हैं। इन
 क्रिमियों से कुछ उत्पन्न होता है। इस ही प्रकार पुरीषज
 क्रिमियां हैं।

अब विचारिये कि क्रिमियों का वर्णन कैसा स्पष्ट है। दृश्य
 अदृश्य, सूक्ष्म, स्पृजादि सब प्रकार के बीजों की गणना कर दी
 है। नाम बतलाना भी किम ढंग से की है अदृश्य और सूक्ष्म
 क्रिमियों को अपियो ने किस प्रकार दृष्टि गत किया है। देखा ही
 नहीं किन्तु तज्जन्य रोगों का वर्णन तथा इन के रंग आदि का
 वर्णन कैसा विगद रूप से किया है। रंग के सम्बन्ध में प्रयादा
 वृत्त ताम्रा आदि ऊपर लिखा गया है। क्रिमिजन्य रोगों को यहाँ
 वर्णन करते हैं।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः
 भक्त द्वेषोतिसारश्च संजात क्रिमि लक्षणम् ।
 हृल्ला समास्य स्वणाम विपाकमरोचकम्
 मूर्च्छा हृदिज्वरानाह कास क्षवथु पीनसान्
 कुष्ठो ज्वरश्च शोपश्च नेत्राभिष्यन्दि एवच
 औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्तिनगन्नरम् ॥

भाषार्थ—ज्वर वर्ण का पदलगा, शूल, हृद्रोग, रजानि, भ्रम,
 भोजन में अरुचि, अतिसार इतने लक्षण क्रिमि उत्पन्न होने पर

होते हैं । जी भिन्नजाति, मुख से लार गिरना, घन्त का न
 पचना, अरुचि, मूठ्ठ्ठा, खर्दि, ये रोग क्रियाओं से हो जाते हैं । कुष्ठ
 ज्वर श्राप, नेत्रभिष्यन्दि और शीतला आदि संक्रामक रोग इन
 क्रियाओं के कारण ही एक से दूसरे मनुष्य के लग जाते हैं ॥
 आयुर्वेदीय शास्त्रों में रोगों के कारण प्रधानता से दोष माने हैं ।
 कीटाणुओं को कर्हो २ साधारण कारण माना है । रक्तवाही स्रोत
 आमाशय, हृदय, पुण्ड्रिकादि के पिगड़ने से कीटाणु अवश्य
 उत्पन्न होते हैं । और शरीर के भीतर बाहर अनेक रोग
 उत्पन्न करते हैं । किन्तु हमारे यहां एलोपैथी वालों के समान रोग
 के कारण एक मात्र कीटाणु ही नहीं माने गये । दोषों का ज्ञान
 दुर्लभ और अतीन्द्रिय होने के कारण वे लोग यहां तक नहीं पहुंचे।
 आप सोच सकते हैं कि संसार की कोई वस्तु बिना वायु के
 उत्पन्न नहीं होनी । तब ये जीवाणु बिना वायु के कैसे उत्पन्न हो
 सकते हैं । इसी प्रकार जीवाणुओं में घनिष्ठता आदि बिना श्रेष्ठमा
 और पित्त के नहीं हो सकते । अतएव यह अवश्य मानना पड़ेगा
 कि रोगोत्पादक दुषित जीवाणु दुष्ट हृष्ट घातादिकों से पैदा होते
 हैं । आप अच्छी तरह समझ लेंगे कि जब वायु द्वारा सोमगुण
 विशिष्ट शुक्र और आग्नेय गुण विशिष्ट शोणित के संयोग से ही
 मांस पिण्ड उत्पन्न होता है तब जीवाणुओं की उत्पत्ति में वायु तथा
 सोमगुण युक्त कफ, और अग्निगुण युक्त पित्त को मानना क्या
 ठीक नहीं है । इसलिये हमारे शास्त्र इन जीवाणुओं को रोगोत्पा-
 दक मानते हुए भी प्रधानता से दोषों को ही कारण मानते हैं ।
 हां इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि कहीं दुष्ट दोषों से और कहीं
 दुष्टोद्भव कीटों से, कहीं दोनों के संयोग से, रोग की उत्पत्ति
 घट्टि होती है ।

आयुर्वेद मतानुसार क्षय रोग में कीटाणुओं की सत्ता ।

उपर्युक्त जीवाणु वाद में यह जना जाता है कि शोष ज्वर, हृदय रोग में क्रिमियों का होना आयुर्वेद शास्त्र भी मानते हैं । क्षय रोग में ये क्रिमियां इस प्रकार उत्पन्न होती हैं ।

- (१) कफ की वृद्धि, और आम्लाशय का विगड़ना ये क्षय रोग के प्रारम्भिक चिन्ह हैं । इसमें आम्लाशय में कफज क्रिमियां होती जाती हैं और वे आहार के सारभाग को विगाड़ देती हैं ।
- (२) क्षय रोग में रक्त विगड़ता है । रक्त से रक्त रूपित होना है अतः "रक्तमाहिशिरा स्थान" इस प्रमाणानुसार रक्त या हीम गलियों में भी सूक्ष्म रक्तज क्रिमियां होती हैं । इस से प्रत्येक यत्न करने पर भी रक्त हीम ही निश्चलता है ।
- (३) हृदय में त्रिदोषों के विगड़ने से यक्ष्मा होना है और हृदय में भी कीटाणुओं का होना लिखा है इस से क्षय रोग में हृदय के विगड़ने पर कीटाणु उत्पन्न होते हैं ।
- (४) प्रतिभ्याय के विगड़ने और बढ़ने से यक्ष्मा शीघ्र उत्पन्न होजाता है । और प्रतिभ्याय के अधिक विगड़ने पर क्रिमियां उत्पन्न होती हैं जैसा कि लिखा है "मूर्च्छन्ति क्रमयश्चात्र भ्रवतास्त्रिधास्तथाणव " इस में क्षयरोग में मस्तिष्क की ओर कीटाणुओं का होना सम्भव है ।
- (५) " कुष्ठो, ज्वरश्च शोषश्च " के अनुसार जब शोषरोग सन्नामक है तब इस में क्रिमियों का होना शास्त्र सम्मत है ।

क्षयरोग के प्राचीन मतानुसार

कारण

क्षयरोग के इन पश्चिमीय गवीन कारणों की तरफ से ध्यान हटाकर अब आयुर्वेदीय प्राचीन कारणों की ओर अपने पाठको का ध्यान र्चांचते हैं। प्राचीन महर्षियों और अर्वाचीन विद्वानों के विचारों में पृथगी आकाश का सा अन्तर है। प्राचीन महर्षि आध्यात्मिक ज्ञान सम्पादन करते थे और आज के विद्वान् सांसारिक कार्य में दत्त हैं। उन की दृष्टि प्रत्येक विचार में भीतरि जाती थी और आजकल के विद्वानों की बाहरी ही रह जाती है। उन का ज्ञान निर्मल था और आज का बनावटी उन का एक २ वाक्य सारमय था और आजकल के बड़े २ पांथे निरर्थक। उपर्युक्त क्षय सम्बन्धी नई विवेचना भी इस ही ढंग की है। हम कीटाणु ज्ञान को मानते हुए भी यह कहते हैं कि ये कारण मुख्य या पर्याप्त नहीं हैं। इस बात का विचार करना चाहिये कि ये कीटाणु सब प्रकार के शरीरों में प्रवेश कर सके हैं या किसी विशेष प्रकार के शरीरों में, जिस प्रकार किसी खेत में बोया हुआ बीज तब ही उगता है जब उस के अनुकूल भूमि हो। विपरीत या ऊसर भूमि में बिना उगे ही पड़ा रहता है। उस प्रकार ये कीटाणु भी बढ़ने तथा रोगोत्पन्न करने के लिये अपने अनुकूल शरीरों को ही चाहते हैं ऐसा कीटाणु-मत-वाले भी मानते हैं।

उपर्युक्त बातें ही ता० २४-४-१४ को डाक्टर पी० पन० शर्मा ने " रिफाहेशियम " मन्दिर में व्याख्यान देते समय कही थी " यक्ष्मा रोग की उत्पत्ति के दो प्रधान कारण हैं एक

भूमि, दूसरा बीज । भूमि मनुष्य का शरीर, और बीज रोग के बीजाणु । यदि भूमि अनुकूल नहीं है तो बीज नहीं उगेगा । अर्थात् यदि मनुष्य शरीर में अक्षय्य कारक शक्ति है तो बीजाणुओं से व्याधि नहीं होगी । साधारण रीति से सामान्य अवस्था में यदि शरीर अच्छी तरह स्वस्थ हो तो बीजाणु चाहे हमारे श्वास के साथ भीतर ही क्यों न चले जायें तो भी मरजाते हैं । हमें निश्चय है कि जितने लोग आज इस समय यहाँ उपस्थित हैं उन में से कोई एक भी ऐसा नहीं है जिन पर उन बीजाणुओं ने आक्रमण न किया होगा । ये विश्वव्यापक हैं । ये मकानों, बस्ती की सड़कों और रेल की गाड़ियों की छाया में रहते हैं । और ऐसी कोई भी जगह नहीं है जहाँ वे न हों । हम सब श्वास द्वारा शरीर में इन्हें ग्रहण कर लेते हैं और तो भी सब प्रकार स्वस्थ रहते हैं ॥

यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि बीजाणुरूपी गुरु का क्या हुआ ? वह बेमौत मारा गया । बीज एक ऐसी भूमि में पड़ा जहाँ उस का पौधा लग न सका, केवल वे प्रारब्धहीन लोग जिन का स्वास्थ्य बहुत निर्बल है या जिन की द्वाती बहुत कमजोर है । जो मैली गर्द से भरी हुई और स्वच्छ हवा से रहित कोठरियों में काम करते हैं या दुःसाध्य रोगों से ग्रसित हैं या शक्ति से अधिक काम करते हैं उन के शरीर इन बीजाणुओं के लिये उर्वरा भूमि का काम देने हैं ॥

आयुर्वेदीय तत्त्वचिद् विद्वानो ने ऐसे निरर्थक वाह्य कारणों की तरफ ध्यान न दिया, उन का जज्ञ्य इस बात की ओर रहा कि कितने कारणों से शरीर ऐसा बनता है जिस में क्षय रोग उत्पन्न होसके, अथवा यों कहिये कि उस में कीटाणु प्रवेश कर के बढ़ सकें तथा रोग उत्पन्न कर सकें। उन्हो ने ऐसे कारणों को मुख्य समझ कर वाह्य परतन्त्र कारणों की तरफ ध्यान नहीं दिया ॥

आयुर्वेदीय प्रसिद्ध ग्रन्थ चरकसंहिता में इस रोग का बड़ा भाषपूर्ण विवेचन किया गया है। इस रोग के सम्पूर्ण ४ कारणों को एक छोटे से वाक्य में लिख कर मानो सागर को गागर में भर दिया है। उस में लिखा है—“इह खलु चत्वारि शोषस्या-यनानि” तथा—साहसं, सन्धारणं, क्षयो, विपमाशनमिति, शोषरोग के निश्चय चार कारण हैं—साहसं, वेगोंको रोकना, क्षय और विपमाशन ॥

साहस का व्याख्यान

साहस एक ऐसी शक्ति है जिस के द्वारा साधन शून्य पुरुष भी कठिन से कठिन कार्य करने को कटिबद्ध हो जाता है और उन कार्यों को पूर्ण भी कर लेता है पर ऐसा साहस जिस से हृदय और फुफुसों को घाधा पहुँचे वह क्षय, उर' क्षय जैसे भयङ्कर रोगों का उत्पन्न करने वाला है। जो पुरुष यत्नेहीन है वह साहस का समाश्रय लेकर दुर्बल मज्जयुद्ध में प्रवृत्त हो जाये अथवा अत्यन्त भारी बोझ को उठाने लगे अथवा अति वेग से धनुष द्वारा घाण फेंकने लगे अथवा अति उच्च स्तर से वेदादि का पाठ करने लगे अथवा उड़लने, कूदने आदि व्यायाम को अत्यन्त करने लगे अथवा श्री गंगादि महा नदियों में अत्यन्त तैरने लग अथवा गिरपड़ने से अकस्मात् जिन के चत स्थल में चोट लग जावे, ऐसे अपनी शक्ति से अधिक परिश्रम करने वाले मूर कर्मा पुरुषों के चत स्थल में क्षत हो जाता है उस क्षत पर वायु ध्वात्रमण करता है और वहाँ के कफ को मुखा इधर उधर नीचे तिरछा जाता हुआ फुफुस आदि स्थानों में पहुँच अनेक रोगों को उत्पन्न कर देता है।

दुष्ट वायु के कर्म

इस वायु का जो प्रवेश शरीर की संधियों में पहुँचता है उसी से ज्वरमा, अंग शैथिल्य और ज्वर उत्पन्न हो जाते हैं । इस वायु का दूषितांश जब श्वासाशय में पहुँचता है तब ज्वर, हृदय रोग अरुचि और अनाध्यास हो जाते हैं । जब फुफुस और प्राणवाहो श्रोत्रों में पहुँचता है तब प्रतिश्याय, कास, श्वास उत्पन्न हो जाते हैं । जब शिरोभूमि में पहुँचता है तब शिरो रोग, उत्पन्न हो जाती है । जब कण्ठ में पहुँचता है तब खरभंग आदि उत्पन्न हो जाते हैं । इस प्रकार घृत्तःस्थल, फरक, फुफुसों में पहुँच जाने से कास उत्पन्न हो जाता है । और कास में बलःस्थल के क्षत के कारण कफ के साथ कथिर भी धुँकने लगता है । तब कफादि दोष और रश्मि के दूषित हो जाने से फुफुस दुर्गन्ध युक्त हो जाते हैं । ऐसे अवसर में धातु आदि के संघात से परमायु समान अनेक क्षीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं । और शनैः २ मनुष्यों के धातुवाटि को चरने लगते हैं जिस से मनुष्य सूखता जाता है इस प्रकार शक्ति से अधिका कार्य लेने वाले साहसी पुरुषों को शोष उरःक्षत उत्पन्न हो जाते हैं और पुनः उसमें क्षय के अन्य ज्वरादिक न्यवसायधानों से हो जाते हैं । जिस से ग्रीष्म ही यह मनुष्य मृत्यु का ग्राम बनजाता है । कोई २ विद्वान् एक मात्र क्षीटाणुओं को ही क्षय रोग का कारण मानते हैं पर यह उन की दर्शनीकता की अदूर दर्शिता है । इस विषयका स्पष्टतया वर्णन आगे किया जायगा ।

साहस का व्याख्यान

साहस एक ऐसी शक्ति है जिस के द्वारा साधन शून्य पुरुष भी कठिन से कठिन कार्य करने को बटिवज्र हो जाता है और उन कार्यों को पूर्ण भी कर लेता है पर ऐसा साहस जिस से हृदय और फुफ्फुसों को घाधा पहुंचे वह क्षय, उरः क्षत जैसे भयंकर रोगों को उत्पन्न करने वाला है। जो पुरुष यत्नहीन है वह साहस का समाश्रय लेकर दुरुह महजगुस में प्रवृत्त हो जायें अथवा अत्यन्त भारी बोझ को उठाने लगे अथवा अति वेग से धनुष द्वारा पाण फेंकने लगे अथवा अति उच्च स्तर से वेदादि का पाठ करने लगे अथवा उद्वलने, कूदने आदि व्यायाम को अत्यन्त करने लगे अथवा श्री गंगादि महा नदियों में अत्यन्त तैरने लगे अथवा गिरपड़ने से अकस्मात् जिन के यत्नस्थल में चोट लग जावे, ऐसे अपनी शक्ति से अधिक परिश्रम करने वाले मूर कर्मा पुरुषों के यत्नस्थल में क्षत हो जाता है उस क्षत पर वायु आक्रमण करता है और वहां के कफ को सुखा इधर उधर नीचे तिरछा जाता हुआ फुफ्फुस आदि स्थानों में पहुंच अनेक रोगों को उत्पन्न कर देता है।

दुष्ट वायु के कर्म

इस वायु का जो अंश शरीर की संधियों में पहुंचता है उसी से जृम्भा, अंग शैथिल्य और उग्र उत्पन्न हो जाते हैं। इस वायु का दूषितांश जब धामाशय में पहुंचता है तब उग्र, हृद्य रोग अर्चि और प्रनाम्बादन हो जाते हैं। जब फुफ्फुस और प्राणवाही धोनो में पहुंचता है तब प्रतिश्याय, फाल, श्वास उत्पन्न हो जाते हैं। जब शिरोभूमि में पहुंचता है तब शिरो रोग, उत्पन्न हो जाते हैं। जब कण्ठ में पहुंचता है तब स्वरमंग आदि उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार वक्षःस्थल, कण्ठ, फुफ्फुसों में पहुंच जाने से फाल उत्पन्न हो जाता है। और फाल में वक्षःस्थल के लत के कारण कफ के साथ खरि भी युक्त हो जाता है। तब कफादि दोष और खरि के दूषित हो जाने से फुफ्फुस दुर्गन्ध युक्त हो जाते हैं। ऐसे अवसर में वायु आदि के संघात से परमाणु समान अनेक कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। और शनैः २ मनुष्यों के धात्यादि को चरने लगते हैं जिस से मनुष्य सूखता जाता है इस प्रकार शक्ति से अधिक कार्य लेने वाले साहसी पुरुषों को शीघ्र उरःक्षत उत्पन्न हो जाते हैं और पुनः उसमें क्षय के अन्य उदरादि रूपा असावधानी से हो जाते हैं। जिस से जीव ही यह मनुष्य मृत्यु का गाल बनजाता है। कोई २ विद्वान एक मात्र कीटाणुओं को ही रूय रोग का कारण मानते हैं पर यह उन की दर्शितिकता की अदूर दर्शिता है। इस विषय का स्पष्टतया वर्णन आगे किया जायगा।

॥ सन्धारण का व्याख्यान ॥

सन्धारण का अर्थ है धारण करना, प्रश्न होता है किने धारण करना ? कहना पड़ेगा, अधारणीय प्राकृतिक मूल मूल वायु के आगत वेग को धारण कर लेना अर्थात् जो पुरुष राजा गुरु स्वामी पिता पितामहादि वृद्धों की सेवा में बैठा हो वा लिखने पढ़ने में संलग्न हो वा स्त्रियों में बैठा हो वा ऊंची नीची सजारी में चल रहा हो, ऐसे समय भय लज्जा आलस्यादि किसी कारण से वा प्रसंग की अपूर्णावस्था के कारण जो पुरुष अधोवायु, मूत्र, पुरीष, के वेगों को रोकता है, उन वेगों के रोकने से वायु कुपित हो जाता है और यह प्रकुपित वायु कफ और पित्त को भी प्रकुपित कर शरीर में ऊपर नीचे तिरछा गमन करता है । और शरीर की सधियों में पहुंच मार्गों को अवरुद्ध कर पीडा उत्पन्न कर देता है, यह वायु अत्रमण्डल और मलाशय में पहुंच पित्तानुबन्धी हो अतिसारादिक उत्पन्न कर देता है अथवा जय इन ही स्थानों में स्वतंत्र रूप से पहुंचना है तब मलाशय, आनाह, उदावर्त पैदा कर देता है । दोनों पसलियों और कन्धों में पहुंच शूल उत्पन्न कर देता है । इसी प्रकार आमाशय हृदय, वरुण, शिर फुण्डुल में पहुंच ज्वर, काल, श्वास, रक्तपित्त हृदय रोग, प्रतिश्याय, स्वरभंग और शिरोरोगों को पैदा कर देता है । और दुष्ट रस को अनेक रूपों में मुख से निकालता है । इस प्रकार नवीन रसादि क न बनने और बने हुए के विगडने से मनुष्य सूक्ष्मता जाता है और क्षय रोग युक्त पुकारा जाता है ।

ध्यान रचना आदिये जब वातादि दोष उपद्रव हो आमाशय के
 आश्रय से ज्वरादिक उत्पन्न कर देते हैं तो मनुष्यो को यही ज्वर
 यक्षुत दिन सताये रहता है और पुनः यही ज्वर चिकित्सा क
 र्हेपरित्यक्त से विषम वा जीर्ण हो जाता है। इसी ज्वर में फिर काल
 उत्पन्न हो जाता है और पुनः यही काल यक्षुत तक पहुँचाना है।
 इसी प्रकार ज्वर वातादि दोष प्रकाशय ग्रहणो आदि वा आश्रय
 लेते हैं तो प्रथम संग्रहणी प्रतिसारादि उत्पन्न हो जाते हैं तथा
 इन ही रोगो में अमावधानी रक्षण से कासादि भी उत्पन्न हो
 यक्षुत होजाता है। इसी काल में रक्त वा भी दर्शन हो जाता है।
 पर यह सब कालिक और सार्वत्रिक नियम नहीं, व्यक्तों के
 मार्ग पर इन प्रकार की गति विनति निर्भर होती है। इस प्रकार
 व्यक्तों के अन्तर्गत से अन्वय रोग होकर भी यक्षुत उत्पन्न हो जाता
 है। यक्षुत वा इस प्रकार उत्पन्न होना ज्वर के ज्वर विषमाशनादि
 हेतुओं में भी अन्तर्भाव रूप से परिगणन कर लेना योग्य है।

॥ क्षय का व्याख्यान ॥

जो पुरुष जोर और चिन्ताओं से दुर्गितहृदय रहते हैं अथवा जिन के मन को ईर्ष्या, उत्कण्ठा, भय, क्रोध, आदि सताते रहने के अथवा स्निग्ध पदार्थों की तो क्या बर्हे जिन को भर पेट रोटी भी नहीं मिलती और तिस पर भी अनेक छोटी चिन्ताएँ गुट गुटाती रहती हैं ऐसे पुरुषों का रस दुष्ट दंशों से क्षीण हो जाता है और पुनः रक्त न बनने के कारण ऐसे पुरुष सूखते जाते हैं। इस प्रकार मगो माजिन्य पुरुषों को क्षय हो जाता है, इस के अतिरिक्त स्निग्ध भोजी घाग्नाधारण स्थिति वाले पुरुष जब शक्ति से अधिशू मथुन करते हैं, रमणियों में जो इस प्रकार मदान्ध हो रमण करते हैं जिन को न दिन का ध्यान न रात्रि का ध्यान, मथुन म न एक घार की गिनती न अनेक घार की गिनती, ऐसे पुरुषों के वीर्य और प्रोज क्षीण हो जाते हैं। वीर्य के क्षीण हो जाने से मथुन न वीर्य के स्थान पर रक्त निकलने लगता है, तब वीर्य हीन वीर्य चाहिनी नाड़ियों में दुष्ट वायु घुस मजा का सुजाता, अस्थि आदि रस पर्यन्त धातुओं को त्रिलोम क्षय प्रक्रिया से लुप्त देता है ऐसे समय यह वायु, विस और कफ को भी उदीर्ण कर दंशों पसीलियों और कन्धों में वेदना और कष्ट का विहृत पर देता है। कफ को उद्देजित कर सिर में भ्रम प्रतिश्यायादि उत्पन्न कर देता है, संधियों को पीडित कर अंग जेधिलय, अरुचि उत्पन्न करता है। इस प्रकार दोष त्रय की दुष्ट से ज्वर, प्रतिश्याय, काम, श्वास, स्वरभगादिक उत्पन्न हो जाते हैं, तब यह पुरुष इन शोषण-कारक उपद्रवों उपद्रुत हो सुष्क होता चला जाता है, इसी का नाम पुनः क्षय युक्त कहा जाता है।

॥ विषमाशन का व्याख्यान ॥

ऐसे भक्ष्य, भोज्य, जेयादि पदार्थों का सेवन, जो १ प्रकृति, २ करण, ३ संयोग, ४ राशि, ५ देश, ६ काल और ७ उप-योग संस्था के विरुद्ध हो, विषमाशन कहाता है।

- (१) प्रकृति का अर्थ है—स्वभाव, भोजन के समय खाने योग्य द्रव्य प्रकृति का विचार करना, यथा उर्ध्व स्वाभाविक गुरु और मुद स्वाभाविक लघु है, इन में से यथा प्रकृति सेवन करना।
- (२) करण—कहते हैं स्वाभाविक द्रव्यों के संस्कार को, यथा जीतल जल टर में सेवन किया हुआ निरुपे दुषित करता है। और यही शीतलजल अग्नि द्वारा पांडुरांश अष्टमांश आदि पदाकर सेवन किया हुआ, त्रिदापन्न है और टरपाचक है।
- (३) संयोग—दो द्रव्यों के मिलने को संयोग कहते हैं, यथा—समान भाग में गधु और तृत चाये हुए विष समान है और वेही विषम भाग से चाये हुए अनेक रोगों के नाशक है।
- (४) राशि—इस का अर्थ है सर्वग्रह और परिग्रह। सर्वग्रह का अर्थ है सब घन्तुओं को इकट्ठा कर समझ लेना, परिग्रह का अर्थ है पृथक २ घन्तुओं का प्रमाण निश्चय कर लेना। यथा—भोजन आधसेर का लेना इस का नाम सनग्रह और इसी में निश्चय करना इतना चून और इतनी दाल खाने में आई है इस का नाम है परिग्रह। राशि के विचार से अनेक लाभ हैं, प्रत्येकविषय में राशि सम्बन्धी विचार करना योग्य है।
- (५) देश—अर्थ स्पष्ट है, विचार करना—यहां किन २ द्रव्यों की उत्पत्ति होती है, किन २ घन्तुओं का प्रचार यहां अधिकता से है, यथा—गोधूम खानेवाले देशवासियों को निरन्तर तदुक्त सेवन और तदुक्त भस्ती देशवासी को प्रतिदिन गोधूम चूना खाना अहितकारी है।
- (६) काल—अर्थ स्पष्ट है, यह दो प्रकार का होता है (१) नित्य

(२) आवस्थिक । नित्यग ऋतु सात्म्यापेक्षी, और आवस्थिक त्रिकारापेक्षी होता है । प्रत्या आहारादि में ऋतु और विशार क अवसर को देखना योग्य है, यथा- शीष्म ऋतु में द्राक्षा मेंवन ऋतु सात्म्य होने के कारण नित्यग है और शीष्म ऋतु के उबर में ऋतु वैषम्य उत्पादकपान आवस्थिक है ॥

(७) उपयोगसस्था-रस का अर्थ है आहारादि के उपयोग का नियम पूर्वक होना । यथा-आहार की अधिकता अजीर्णप्रद है, बेसा न करना, अथवा अजीर्ण में खाया हुआ, रोगप्रद है ऐसा न करना इत्यादि ।

(८) उपयाचा-उपयोग करनेवाले को कहते हैं, किया हुआ भोजन अच्छी तरह पच गया है इसे जानोवाला होना योग्य है ।

विषमाजन से अन्न शीघ्र २ नहीं पचता । वात पित्त कफ विषम हो जरीर में पचने २ स्रोतो क मुख को रोक स्थित हो जाते हैं और पाचकाग्नि का विवृण कर देते हैं । तब पाचन न होने २ कारण रसकादि नहीं बनते । मनुष्य जो कुट्ट खाता है उस का अधिकतया मज्जभाग होजाता है, तत्रश्चान् दुषित वायु यत्र तत्र पटुच अगमर्द, कण्ठनाश, पार्श्व वेदना, स्वरभेद, प्रतिश्या यादि का उत्पन्न कर देता है । इसी प्रकार प्रदुषित पित्त दोषानु- रन्धाहा उर, द ह, अतिनागदि का पैदा कर देता है । और दुषित दुग्धा शनेष्मा दोषानुबन्धी हा प्रतिश्याय, सिर में भारापन, काल, श्वास, अह्वि, अग्निमाद्यादि को उत्पन्न कर देता है । इस प्रकार दापत्रय की दुष्टिमे पुङ्गुस और हृदय विवृण हा जाते हैं और काल के साथ र घर का भी दर्शन होने लगता है । इस प्रकार रसादि के नवीन न बनने और बने हुएओं के क्षीण होने में छय हाजाता है । यहाँ यह भी बहर्दना योग्य समझते हैं कि अपने २ स्रोतों क योग में धातु धातु द्वारा पुष्ट होने हैं और अपने स्रोतों के रुकजाने से रसादि धातु क्षीण हो जाते हैं ।

भारत में जयरोग क्यों बढ़ रहा है

(देशव्यापी कारण)

आज भारत में जो जय का दौर दौग है इस के देशव्यापी प्रभाव कारण, वीर्यनाश, दुर्बलता, दरिद्रता, नई सभ्यता अपवित्रता और नित्य कर्मों का त्याग आदि हैं।

जय रोग और वीर्य नाश | वीर्यरक्षा की ओर भारतवासियों का बहुत कम ध्यान है। छोटे-२ बच्चों का विवाह कर

बचपन में ही पानों में बेड़ियां डाल देते हैं। दुसंग में पढ़ सेकड़ों बच्चे वीर्यनाश करते हैं। आज लार्यों गुवा नपुंसक बन अपने जीवन को भार रूप समझते हैं। ऐसे थोड़े ही पुरुष होंगे जिन्हें वीर्य विकार न हो, दुर्बल वीर्य वाले पुरुषों को जय के उत्पन्न होने में देरी नहीं लगती। यदि पुष्ट वीर्य हो, मनुष्य बलवान हो बचपन से शल्यकारी हो तो कभी जयरोग नहीं हो सकता।

यह बात गिधिवाद् सिद्ध है कि जय से भारतवासी दुर्बल, क्षीणवीर्य होने लगे तब ही से भारत में जयरोग मानवों का निर्दयता से जय कर रहा है।

महर्षि आत्रिय ने जयरोग से बचने के लिये चार बातें सिद्धांत रूप से पतलाई हैं उन के वाक्य बड़े मजबूत हैं और चार २ मग्न करने योग्य हैं। उन चार उपदेशों में एक उपदेश यह है।

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः ।
जयेह्यस्य बहूनरोगान्मरणां वा नियच्छति ॥

आहारका अन्तिम परिणामरूपी तेज वीर्य्य है उस वीर्य्य की सय को रक्षा करनी चाहिये । वीर्य्य के सय होने पर बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं और मृत्यु तक प्राप्त होती है । आज कल के नवयुवकों को चादिये कि अपने २ कमरों में इस उपदेश पूर्ण पाठ्य को मौटे मौटे अक्षरों में लिखकर टांग लें और श्रद्धा से इसे पढ़ें और अपने सहयोगियों को सुनावें । पढ़ें और सुनावें ही नहीं किन्तु ऋषियों द्वारा बनाई इस देवी कानून के ऊपर चले इतना भी ध्यान रखें कि वीर्य्य संरक्षण आरोग्य दीर्घायुष्य की कुजी है । जीवनरूपी महज का आधारभूत दृढ़स्तम्भ है । अथवा सुख पूर्वक जीवन बदलने की ऊंचा लँजानेवाला सुगोमित वृत्त है । अनेक रोग रुगी पथन के झपाटे से डगमगाती हुई शरीर रूपी नौका को कालरूपी समुद्र में डूबने से बचाने और स्थिर रखनेवाला मज़बूत बॉगर (Sheet Anchor) है, वीर्य्य का एक विन्दु स्थिर के ४० विन्दुओं के बराबर है ।

जो मनुष्य किसी वस्तु का मूल्य नहीं जानता वह उसे व्यर्थ खर्च कर उलतता है । मणि को अज्ञता से काँच समझके कूट देता है । भारत वासी नवयुवकों को वीर्य्य संरक्षण के लाभ नहीं समझाये जाते । उनको वीर्य्य रक्षा करने और प्रवृत्त करने का उपदेश नहीं दिया जाता । इस से अधिकांश भारतवासी युवा वीर्य्य नाश करते हैं, मैथुन में फँसे रहकर दुर्बल बनते हैं किसी अमेज़ी विद्वान् ने यह ठीक कहा है ।

The greatest enemy to the health of man, is woman the worst enemy to the health of woman, is man.

अर्थात् पुरुष की आरोग्यता का बड़े से बड़ा शत्रु स्त्री, और स्त्री के स्वास्थ्य को नाश करने वाला कष्टकर वैरी पुरुष है ।

किसी विद्वान ने कहा है कि मनुष्य शरीर में दिमाग, ज्ञान का भण्डार होने से राजा है। और वीर्य राजकोप, इन्द्रिया उस का सजाह दैनपाली पार्लोमेंट की मेम्बर है। जिस पुरुष में इन्द्रिया असावधान होती है। दुष्ट कार्य में फलने की सजाह देती है। ये अपने स्वामी को धोरा दे राजकाप का व्यथ लुटवा देती है। राजकोप में फसी होने से डिमान भी कम जार जाता है। तथा शरीर के अंग प्रत्यग भी निबल रहते हैं। रक्त का कोप हृदय और फेफड़े भी दुर्बल हो निबलते हैं, जठ रागि मन्द पड़ जाती है ज्ञान तनु निबल हो जाते हैं। इस से मनुष्य में इतना घल नर्दा रहता जा बाहरी रागात्पादक शत्रुओं का रोक सके।

आजकल आये से अधिक क्षयरोगी ऐसे देखने में आते हैं जिन्हें पहले वीर्य विकार था। किन्तु उस की चिन्ता न कर मेधुन कर्म में फसे रहते थे। जिस से शरीर और फेफड़े दुबल दान लगे। पीछे सहसा प्रतिष्याय हो गया, प्रतिष्याय (जुवाम) में भी मेधुन करना न छोड़ा। इस से खासी भी आ गई। साथ में ज्वर की मन्द गरमी भी रहने लगी इस अवस्था में भी वीर्य का अपव्यय धन्द न किया गया जिस से अन्त में उन्ह क्षय का शिकार बनना पड़ा। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में लिखा है,—

“ प्रतिष्यायोदयो काल दासात्सजायते क्षय ” अर्थात् जुवाम से खासी और खासी से क्षयरोग उत्पन्न हो जाता है। यह बात आजकल के नवयुवकों में प्रत्यक्ष देखी जा रही है।

यदि भारत में क्षयरोग से होनेवाली शोचनीय मृत्यु सत्या का कम करना चाहते हों। तो नवयुवकों की वीर्य रक्षा की और ध्यान दें, उन को मल्लकारी बनाओ यदि आज के समान वीर्य नाश रहैगा तो क्षय का इसी प्रकार ढका बजता रहैगा और उस के स्याम को रोकने में किसी की चीन्चपड़ न चलेगी।

मादक पदार्थों का सेवन | जो आज यही अधिकता से हो रहा है, घटे २ धनिष्ठ द्विष द्विष कर या प्रगटरूप से जरायू के प्याले गट गटाते हुए भारत का गला थोड़ते हैं। कोंकन की खाबर अनेक युवा अपना काला मुद्गर जरीरो का सत्यानाश करते हैं। तमाखू का पीना तो आजकल इन्द्रभवन का सुख समझा जाता है, जेन्टिलमेन बनने के लिये तो इस की परमावश्यकता है, घड़ी घड़ी पर चुस्ट के बिना काम नहीं चलना, अपने बराबर वाले इष्ट मित्रा का आदर नहीं होता, पण्डितों को भी इस की आवश्यकता होती है। क्योंकि कम से कम ६ मासे हुलान को नाक में ठूसे बिना कोई दाशी का परिदत नहीं हो सकता।

यदि रईस, उमराव, ताल्लुकदार पान में तमाखू न पायें तो डा पीकडान बनानेवालों की फिर जरूरत ही न रहे। स्वदेशी कारीगरी का महती हानि पहुँचे। भग, घरस गाजा ये चीज तो योगियों के भूषण हैं, शिवजी की प्यारी हैं, इन्हें छोड़ना तो एक प्रकार का पाप है, चड्ड, मदर, अफीम ये राजा नरार्ज का सुगकरने वाले हैं। जिस देश में ऐसे विचार वाले पुरुष हों, सब ध्रेणी के पुण्य दुर्व्यसन में फँसे रहने हों, वहाँ क्षय का डका बजे तो आश्चर्य ही क्या है। इन मादिक पदार्थों के सेवन से भारत वासियों के फेफड़े निर्बल होगये हैं, जिस से तत्काल यह बीमारी असर करजाती है। इन कारणों के बिना मिटाये क्षय रोग का आधिपत्य कम नहीं हो सता।

दरिद्रता | दरिद्रता भी तय का प्रधान देशव्यापी कारण है।

आज बड़े २ धनिकों का पेट खाली है। ऊपर से टीमटिमाक बन रहा है, मोटरें दौड़ रही हैं, परन्तु भीतर ही भीतर चिन्ता, शोक की अग्नि घबक रही है, ऐसे पुरुषों को अवश्य तय होगा चाहे वे कैसी ही हिक्काज़त करें, इन कीटाणुओं से बचने के लिये कितने ही थूकदान रखे परन्तु वे बच न सकेंगे। जिन पुरुषों को पेट भर अन्न खाने को नहीं मिलता ऐसे पुरुषों को भी यहाँ कमी नहीं है, प्रतिवर्ष किसी न किसी प्रदेश में अकाल की कृपा हो जाती है, ऐसे पुरुषों के निराहार रहने से रक्तादि धातु नहीं बनते जिस से तयरोग उन पर आक्रमण कर और भी दुःख देता है।

तयरोग और नई सभ्यता | नई सभ्यता भी भारतवर्ष में तय का बाज़ार गर्म कर रही है। जिस सभ्यता के रंग में प्रति शत

नव्वे भारतवासी रंगते चले जा रहे हैं, यह ही इस दुष्ट रोग का पालन पोषण कर तिल का पहाड़ बना कर दिखा रही है यह नई सभ्यता क्या है? बनावटी सुधार, पश्चिमीय गुणों को छोड़ दुर्गुण दुर्भेष का प्रचार। हा! प्राचीन काल के मेधावी, तेजस्वी, ब्रह्मचारियों की छटा तीस फीटि भारतवासियों में से तीन सौ नवयुवकों में भी दिखाई नहीं देती। आजकल कौन सभ्य शिरोमणि है? जो अपने शरीर को परिश्रम नहीं देता, एक फर्लांग भी पावों चजना पसन्द नहीं करता, चार बातें करते ही मुखमण्डल पर मुक्ता समान स्वेद बिन्दुओं को चमका कर अपनी कोमलता दिखाता है, चार सोढ़ी चढ़कर ही साठ वर्ष के बूढ़े के समान हांपने लगता है, घंटों सायुन के फेन से अपने शरीर को रिगड़ता है और फेन समान मुलायम शय्या पर सोना पसन्द करता है। जिसे बालों के काढ़ने और जूतों की सफ़ाई कराने में अपने बहु

मूल्य समय का अधिक भाग देना पड़ता है। तार्क्य यह कि नये नपयुवकों के मस्तिष्कों में यह बात समाई हुई है कि शरीर को बहुत नाजुक, सुकुमार बनाना और इस ढंग से रहना कि जिस से सहयोगी मित्र मण्डली को कहीं अपनेमें पुराना गवांर-पन न मालूम देवे, नई सभ्यता है। इस नई सभ्यता में नई शिक्षा से भूषित कोई विरलाही भाई का लाल होगा जो न फँसे।

। ऐसे नई रोशनी वाले ही सयरोग की चुधाको शान्त करने के लिये आहार बनजाते हैं। जो मनुष्य कुछ परिश्रम करते हैं, ध्यायाम करते हैं, शरीर को कुछ परिश्रमशील और दुःख सहन योग्य बनाते हैं, ऐसे पुरुषों क इस रोग क भराटे में आने में चार घड़ी लगती हैं। नपयुवकों को धार्मिक और स्वास्थ्य शिक्षा न मिलने से वे धीर्य रत्ता की तरफ भी विडिचम्मात्र ध्यान नहीं देते, जिस से दूषित धीर्यवालों को सयरोग होने में देरी नहीं लगती।

स्त्रियों में भी यह नई सभ्यता चुन पड़ी है। पानी जाने के लिये बर्तन मांजने के लिये कहार; रसाई पकाने के लिये रसोई-दार जिस के घर न हो वह ही बस घटिया, निर्धन और मदा पुरुष है। नई सभ्यता स्त्रियों को इस बात के लिये मजबूर कर रही है कि वे हाथपर हाथ रख के बैठी रहें या डूटी फूटी दिन्डी पढ़ उपन्यासों की उपासना करें और कमल को भी नज्जित करनेवाला अपना कामल शरीर बनाकर अपने अबला नामको चरितार्थ करें। कौन ऐसा नया सभ्य होगा जो अपनी स्त्रियों को भरी पुरानी चाल में पड़ी रखना पसन्द करता हो, गांवों के देसे शहरों में नई सभ्यता का अधिक प्रभाव है। वहाँ पर अधिकतर युवा इस के भक्त हैं। थोड़ा ही समय हुआ हमको एक शहर में नये सभ्य मिले, और उन्होंने कहा कि वैद्य-

जी ! चार महीने से मेरे शिर में बड़े जोर से दर्द हुआ करता था और इस दर्द का कारण बहुत तोजने पर यह निकला कि पहले मैं अपने शिर के नीचे " सुरखाय के परो का तकिया " लगाया करता था उसे न लगाकर रुई का तकिया लगाने लगा, ऐसे २ सुकुमार युवकों की शहरों में कमी नहीं है । शहरों के देगे गाँवों में क्षयरोग से कम रोगी होते हैं, इसके कई कारणों में एक कारण यह भी है कि वहाँ नई सम्पत्ता का रग कम जमा दे । इस विषय में डाक्टर विलसन ने कहा है ।

In towns three times as many people die from consumption than is the case in the country. The explanation of this fact is to be found in the difference in the habits of town and country dwellers.

अर्थात् गाँवों के देगे शहरों में क्षय से जो तिगुने आदमी मरते हैं इस विषय का मुख्य कारण यह है कि गाँव और शहरों के रहनेवाले पुरुषों के रहन सहन में बहुत बड़ा अन्तर होता है ॥

गाँव वाले सम्पूर्ण दिन खुली हुई पवित्र हवा में श्वास ले सकते हैं, वहाँ मकान इतने ऊँचे और घने नहीं होते जिन में शुद्ध हवा और रोशनी न जासके । किसी दूसरे गाँव या किसी मित्रसे मिलने का जाने के लिये रेलवे, ट्राम, मोटर की सवारी नहीं मिलती जिससे उन्हें कुछ परिश्रम कर के जाना पड़ता है, खुली हवा और सूर्य का प्रकाश भी साथ ही साथ मिलता है । वे अपने जीवन को सादगी के साथ व्यतीत करते हैं, रोकड़ा पैसा पास न होने से गाँजा, भांग, दाऊ, ताड़ी आदि पीने की लालसा भी कम होती है । कपड़ा मोटा पहनते हैं ।

और खाना खादा खाते हैं जिससे उनका शरीर बलिष्ठ रहता है फेफड़े मजबूत होते हैं ।

शहर वाले ऐसी गलियों में, जहाँ घने ऊँचे मकान, तंग रास्ता और दुर्बलि पर ही पाखाने होते हैं, रहने हैं । मकान का किराया महंगा होने से थोड़ी जगह में बहुत से आदमियों को रहना पड़ता है रात्रि में मकान को बन्द कर के सोते हैं । मिल, जौन, प्रेस, आदि कारखानों में काम करने वाले मजदूरों को खुली हवा नहीं मिलती प्रत्युत तेल, ग्यास का धुँआं कोयला के रजकृत्य, रुई का रूमां उन के श्वास के साथ जाता रहता है । इस से फेफड़ों और श्वास नलिका में गर्द जम जाती है । मजदूर लोग अपनी पार्स हुं मजदूरी को दुराचारों में खर्च करते हैं । थड़े आदमी अपना वैभव और रहसोपन दिखाने के लिये थड़े २ टाठ से रहते हैं । सैकड़ों खंस तो ऐसी नयाबी सम्पत्ति दिखाते हैं कि पाखाने से धाने पर अपने हाथों से पैरों का भी नहीं चीते, लुरास तक नौकर ही पहनाते हैं । अपना जीवन धेश्या सट्टयास से सार्थक समझते हैं । माहक पदार्थों को सेवन कर दिन में आँखें मीचे हुए योगियों का स्वांग दिखाते हैं । इन कारणों से शहर वालों के शरीर " घटाशे के महल" कहाने वाले होते हैं । और फेफड़े निर्बल होत हैं अतएव हय रोग इन लोगों को इन कं किये का फल चखाता है ।

पहले समय में लियों को अपने २ घर में अनेक काम करने पड़ने थे । पानी खींचना, चून पीसना, रोटी पकाना आदि, जिस से उन का शरीर पुष्ट और फेफड़े मजबूत रहते थे । अिन देशों में आज भी इन कामों के करने का रिवाज है उन देशों की लियां बहुत मजबूत हैं तथा उन की सन्तति भी अच्छी होती है, डाक्टर एन्ड्रस्टॉन, एम० डी० लिखता है कि "There is a great

advantage of carrying burdens on the head' to prevent consumption" अर्थात् शिर के ऊपर उचकाकर बोझा रखना क्षय रोग के न होने देने के लिये बहुत लाभदायक है। किन्तु आजकल शहरों की तथा ऊंची जाति की स्त्रियाँ शारीरिक परिश्रम करने में अपना अनादर समझ त्यागती जाती हैं। इससे अब स्त्रियाँ भी क्षयरोग से अधिक पीड़ित होकर मृत्यु को प्राप्त होती हैं।

सारांश यह है कि क्षयरोग फेफड़े की बीमारी है, और इससे बचने के लिये फेफड़ों का बलिष्ठ रखना परमावश्यक है। फेफड़े बिना परिश्रम तथा उचित व्यायाम किये ठीक नहीं रह सकते आजकल की सभ्यता हमको दीर्घ सूत्री आरक्षणी बनाती है इससे भारत के नवयुवकों को अपनी पुरानी सभ्यता न छोड़कर परिश्रमशील बनना चाहिये।

भारत के सुपुत्रो ! भारत को पूर्ण सुखी, सर्वोच्च सिंहासन पर विराजमान करने की कामना करनेवाले कमनीय कान्ति नवयुवकों ! यदि आपजागों में सच्चे सुधारों की, और भारत को पूर्ण निरोगी रखने की कांक्षा है तो अपनी इस नई सभ्यता की जांच करो अपने मुखों को दर्पण में देखकर प्राचीन समयके एक द्वापक के मुख से मिजान करो, प्रोफेसरधीकमैनके शिक्षाप्रद इस लेख का ध्यान से याद रखना :—

" My advice is do not to make the foolish mistake of taking it for granted that your lungs are in perfect condition, and that it is not necessary to give them any special care. In reality you are walking on the edge of

precipice. Bear this in mind. It is utterly impossible that your lungs should be in good condition unless you give them abundant exercise. Remember it is the one organ in the body that demands continual exercise in order that it may remain healthy. Remember that it is the organ that would show the result of the lack of exercise first, even in the best specimen of manhood that ever lived. Therefore if you do not practise breathing regularly, you may be positive that your breathing power is deficient even though your chest may be as large as that of a Somson and your health every-thing that you might desire. If more people realized the truth of the foregoing statement the death rate from pneumonia and consumption would be reduced one half in less than a year.

अर्थात् मेरी सम्मति ऐसी है " कि हमारा फेंफड़ा ठीक दालेत में है और उनके विषय में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है " ऐसी मूर्खता भरी भूल तुम को नहीं करनी चाहिये । सच पृथ्वी तो एक ऊंचे स्थान के किनारे पर (जिसपर से थोड़ी सी भूल से मनुष्य गिरजाता है) तुम चलते हो ऐसा ध्यान रखो । फेंफड़ों को पूरी कसरत दिये बिना उन को स्वास्थ्य दशा में रखना बिल्कुल असम्भव है । याद रखो कि सम्पूर्ण शरीर में फेंफड़ा मृत्यु का एक ऐसा भाग है कि जिसे निर्गम

रखने के लिये कसरत देने की विशेष आवश्यकता है। ध्यान रखो कि अतिसर अच्छी से अच्छी स्थितिवाले पुरुष के शरीर में भी कसरत न करने के दुष्ट परिणाम को सब से पहले बतामेवाला यह फेंकड़ा ही है। इस से जो तुम्हारी छाती 'सैमसन पहलवान के समान भी विशाल हो और तुम्हें अपनी आरोग्यता में कोई चुट्टि न मालूम पड़ती हो तो भी जो तुम नियमानु-कूल प्रतिदिन दीर्घ श्वास लेने की क्रिया नहीं करते तो यह ठीक मानना कि तुम्हारे फेंकड़ों की क्रिया दोष भरी हुई है। ऊपर कहा हुआ उपदेश प्रजाचर्ग का घडा समूह कर निकले तानिमो-निया और क्षयरोग से होने वाली मृत्यु एक ही वर्ष में आधी रहजाये।

क्षयरोग और अपवित्रता

पश्चिमीय विद्या के प्रभाव से भारत घालियों की दूतज्ञात, और नित्य कर्म एक ढकोसला

समझे जाने लगे हैं। पाने पीने में चौंका चूल्हे का विचार बहुत भदा गिना जाता है। होठलों, और तन्दूरघानों का रिवाज बढ़ रहा है तन्दूरखानों में सामान उत्तम नहीं बनता। चून के साथ सुरैरी, मच्छर, कंकड़ी और रेतो आदि मिले रहते हैं। पानी साफ नहीं होता। चून माइना रोटी भेकना आदि सब ही विधि हीन कार्य होते हैं। चौंका स्थान अति संघोण दुर्गन्धित होता है। चौंके की मोरी अति गन्दी होती है। इस प्रकार सब प्रकार से दुर्गन्धित वायु होजाता है। अनेक मनुष्यों का समा-गम से भोजन होता है। और उन में दगी २ ऐसे मनुष्य भी आ मिलते हैं, जिन्हें ढाद, पाज, कुष्ट, कफ विकार आदि संक्रा-मक रोग होते हैं। जिन के संसर्ग से एक से दूसरे को रोग लग जाता है ॥

घन्य है उन महर्षियों को जो भोजन विधि इस प्रकार से यतना गये हैं कि मनुष्य को स्वयं पाकी दांता चाहिये, अथवा गृह की स्त्री के हाथ से ही बना हुआ भोजन खाना चाहिये। इस नियम में कैसी दूरदर्शिता है। शरीर ही जोर का साधन है उस शरीर का पोषण भोजन से होता है। अतः भोजन जहां तक हो सके उत्तम और पवित्र होना चाहिये। उत्तम भोजन से शरीर और मन दोनों स्वस्थ और सतोगुणी होंगे। विकार युक्त अस्वच्छ भोजन शरीर को रोगी और मन को मैला बना देगा। इस ही सिद्धान्त को लेकर पहले ऋषियों ने चौका की रीति निकाली है। यदि भोजन घर में बनगा तो चौका की शुद्धि, अन्न की शुद्धि, और अपने शरीर की शुद्धि आदि सब अनुकूल होगा। साथ में भोजन करने वाले भी प्रायः समान स्वभाव वाले मिलेंगे। चौका होने से एक दूसरे में संक्रामता न होगी। शुद्ध जल वायु की प्राप्ति होगी ॥

क्षयरोग और नित्य कर्म का नाश | ऋषियों ने नित्य कर्मों की सृष्टि में बड़े विचार से की थी, जिसका पालन करने से अम्य रोगों के समान क्षय रोग भी अधिक नहीं होता था। सदाचार का पालन करते हुए पूर्वज मनुष्य बलवान् और सुखी रहते थे। किन्तु इस समय भारतवासियों का नैतिक कर्म प्रायः नष्ट हो चुका। ऊपर काल उठाना, गो सेधा करना, प्रातः सायं ध्यान करना, बलिवैश्व देव, ईश्वर का स्मरण, घृत शुद्धि, स्नान, अद्भूत जातियों का अस्पर्श, दूषित पुरों की छाया से भी बचना प्रत्येक व्यवहार में स्पर्श-स्पर्श का विचार, अस्वच्छजलपान, सत्य भाषण, ब्रह्मचर्यव्रत, ध्यायाम आदि कर्म भारत से बिदा होकर न मालूम किस कन्दरा में पड़े हुए हैं। ये टकोसजा भरी बातें नहीं हैं किन्तु इन बातों में परमतत्त्व मरा हुआ है। ऊपर काल उठने से निम्न

यथा प्रमाण होगी, आलस्य न होगा, प्रातः काल की सर्वांग पुष्टिकारी वायु मिलेगी, गो सेवा से शारीरिक दुष्ट वायु का हास होगा । गौंके गोबर और मूत्र से मकान शुद्ध रहेगा, शुद्ध दुग्धघृत दधि खाने को मिलेंगे, जिस से शरीर पुष्ट होगा। वायारु विकार युक्त चीजों से छुटकारा मिलेगा । ईश्वर भक्ति से, मन पवित्र, और आध्यात्मिक शक्ति की वृद्धि होगी, लोभ ईर्ष्या आदि दुर्गुण दूर होंगे, वस्त्रों की शुद्धि और स्नानादिकों से शारीरिक स्वच्छता रहेगी । शरीर के भीतर स्रोतों द्वारा शुद्ध वायु प्रविष्ट होगा । दूत अदूत के विचार से संक्रामक रोग एक से दूसरे पर आक्रमण न करेंगे । हवन बलि वैश्वदेव आदि से श्रौत स्मार्त कर्मों के साथ २ गृहशुद्धि भी होगी । प्राणायाम संध्या से भीतरी दुष्ट वायु बाहर निकल जायगी । अधिक क्या कह महर्षियों के प्राचीन नियम पूर्ण विज्ञान से भरे हैं, उन के नाश होने से ही आज ज्ञप के समान संक्रामक रोगों की अधिकता हो रही है ॥

(४) मैं पहले फ्रॉज में नौकर था-परिश्रम खूब करता घोड़े पर मीलों दौड़ता-घोड़े के पीछे भागता । एक समय मुझे सर्दी होगई और मैंने उसकी परवा नकी, और घोड़े से फिर भी काम करता रहा, अब मेरी छाती दुखती है, और गले में धुआंसा उठकर खांसी आती है, जिस के साथ खून आता है, शरीर दिन पर दिन सूखता है छाती का दर्द चैन नहीं लेने देता ।

(६) मुझे प्रमेह होगया था-जो बरसों रहा-बीच २ में जुकाम होने लगे । पेशाब के साथ सुफेदी जाने लगी-चहरा मेरा सुफेद पड़गया-पीछे खांसी होगई । खांसी कभी २ उठती है परन्तु ज्वर की गरमी हो आती है, इस से हाथ पांव और आंखों में जलन रहती है । भूख दिन प्रति दिन गिरती जाती है ।

(७) मैं बहुत मंजून करता हूं परन्तु तौ भी रहता हूं दुबला ही-शं मुझे स्वप्नदोषतौ है । चहरा पीला पड़गया है । रात्रिको दो एक दस्त भी होजाते हैं-खांसी भी रहने लगी है ॥

(८) मुझे प्रदर हो गया था-इस की चर्चा मैंने गुप्त रखली शरीर मेरा गिरा पड़ा रहता परन्तु काम करना मैंने नहीं छोड़ा, पीछे ज्वर आगया । अब खांसी भी है मुझे ६ महीने होगये ।

(९) मैं एक बच्चा हुआ-उस समय न्दाने धोने से सर्दी होगई, जिस में ज्वर आगया-मैंने कुछ ध्यान न दिया, बीच बीच में ज्वर झूटता भी रहा, अब मैं उठ बैठ नहीं सकती; ज्वर, खांसी, श्वास मताने हैं ।

ॐ क्षय के पूर्वरूप

क्षय के पूर्वरूप— श्लेष्मक आना, लुकाप ज्यादा होना, घार २ कफ निकलना, मुख मोटा २ रहना, अरुचि, निर्दोष पदार्थों में दोष दर्शन, भोजन के पश्चात् हल्कासा अथवा वमन, मुख का सूखना, हाथों का घार २ देहना, नेत्रों का श्रेत होना, भुजाओं मुटाई आने की इच्छा करना, स्त्रियों से रमण करने की, निर्मल की होने पर भी, अधिक इच्छा होना, घृणा होना, शरीर का भयंकर दीखना, स्वप्न में सूखे जलाशय, शून्य नगर और शुष्क वन दीखना तथा टूटे घृत्त, और मयूर बन्दर, सर्प, कौआ, घुघू आदि दीखना; घाल, हड्डी और अंगारों के ढेर, दीखना; ये सब रोज यक्ष्मा के पूर्व रूप शास्त्रों में वर्णित हैं ।

ॐ पूर्व रूप में ऐसे लक्षण क्यों होते हैं ॐ

- (१) प्रतिप्याय दि— मस्तिष्क शक्ति के विगड़ने से तथा धीर्य विहार अनिर्बलता से ॥
- (२) अन्न में अरुचि आदि— आमाशय के विगड़ जाने से ॥
- (३) हाथों का घार २ निर्गन्ध — मनोवृत्ति के विगड़ने से, तथा शारीरिक दुर्बलता का मन के ऊपर सहसा प्रभाव पड़ने से ॥
- (४) दुःस्वप्नों का दीखना — धातुओं की कमी के कारण तथा भावी भयंकरता प्रतीत होने से ॥

त्रिदोषवाद आयुर्वेदीय शास्त्रों में प्रत्येक रोग के प्रधान कारण दाप माने हैं । दोषों की दुष्टि से रोग और यथा प्रकृति होने में स्थाय्य होता है । त्रिदोष विज्ञान बड़ा महत्व पूर्ण विषय है और हमारी चिकित्सा का गौरव स्वरूप है ।

डाक्टर लोगों के समान हमारे यहाँ अप्रधान बीटादि अनेक कारणों को न मानकर सब रोगों के कारणों को तीन दोषों में ही लीन कर दिया है । इस विज्ञान तक अभी डाक्टर लोग नहीं पहुँचे हैं । निरपेक्ष पश्चिमीय विद्वान अथ इस दोष विज्ञान की बड़ी प्रशंसा करते हैं । दोष विज्ञान सम्बन्धी एक अध्याय इस के पीछे ही पाठक पढ़ेंगे इस से आयुर्वेदीय दोष विज्ञान की गौरवता और विद्वता ज्ञान सकेंगे ।

दोष भेद से | स्वर भेदो नित्वात् शूलं

लक्षण

संकोचश्चांस पार्श्वयोः ॥

ध्वरो दाहो तिसारश्च पित्तात् रक्तस्यचागमः ।

शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तश्चन्द्ररेवच ॥

कासः कण्ठस्य चोद्धंसो विज्ञेयः कफ कोपतः ।

बहुमांस के ग्यारह लक्षण हैं उन में श्वेत की अधिकता से स्वर भेद, कंठे और पसबाड़ों में खिंचाव, शूल, पित्तकी अधिकता से ज्वर, दाह, अतिशय और खून आना, कफ की अधिकता से शिर भाती रहना, अस्ति, खाँसी और कण्ठ में फाँसे ली पड़ना ये लक्षण होते हैं ।

कारण भेद से शोष भेद और उन के लक्षण, कारण धार लक्षणों के भेद से शोष के व्यवस्था शोष, शोक शोष आदि कई भेद शास्त्रों में कहेंगे हैं। इन में त्रिदोष के समस्त लक्षण नहीं होते तौ भी वे धातुओं को क्षय करने वाले होने से क्षय ही कहे जाते हैं पृथक् २ लक्षण ये हैं।

(१) व्यवय शोष के लक्षण

व्यवाय शोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः ।

पाण्डु देहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ।

व्यवाय (मैथुन) करने से जो शोष होता है उस में शुक्र क्षय के लक्षण अर्थात् लिङ्ग और अण्ड कोषों में पीड़ा, मैथुन में अशक्ति, मैथुन में अल्प तथा अनेक धार धीम्य निकलना, आदि होते हैं शरीर पीला पड़जाता है पीछे वायु द्वारा मज्जादि तथा पुरुष धातुओं का क्षय होता है।

(२) शोक शोष

प्रध्यान शीलः सस्तांग-शोकशोष्यपि तादृशः

शोक शोषी पुरुष जिस धरतु का राज होता है उस के ही ध्यान में रहता है, इस से अंग शिथिल हो जाते हैं तथा शरीर में पीलापन आदि व्यववाय शोषी के समान लक्षण भी होते हैं।

❀ वार्धक्य शोष ❀

जरा शोषी कृशो मन्दवीर्य्य बुद्धि वलेन्द्रियः ।
 कम्पनो रुचिमान् भिन्नकांस्य पात्र हतस्वरः ॥
 धीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारतिपीडितः ।
 संप्रसृतास्यनासाक्षः शुष्करूक्षमलच्छविः ॥
 प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ॥

जो मनुष्य बुढ़ापे के कारण सूखता है उसके ये लक्षण होने हैं- शरीर कृश और वीर्य्य, बुद्धि, बल, इन्द्रिय ये मन्द हो जाते हैं, कम्प, धीर, अरुचि होते हैं कांसि के फूटे पात्र के समान आवाज होजाती है, बिना कफ के धूकता है। भ्रातपत और शरीर में दृढ़कल होती है, मुख, नासिका, और आंख से पानी गिरता है दस्त सुखा, और शरीर रुखा होता है - गात्र व अवयव सो जाते हैं, मुख क्लोम, गला ये सूखा करते हैं ॥

॥ अर्ध्व शोष ॥

अर्ध्व प्रशोषीतस्ताङ्गः संभृष्ट परुषच्छविः ।

अधिक साग के खजने से जो सूख जाता है उसमें अग्न शिथिल हो जाते हैं तथा शरीर की कान्ति अग्नि में भुने पदार्थ के समान अर्थात् श्वाभता लिये हो जाती है ॥

॥ व्यायाम शोष ॥

व्यायाम शोषी भृयिष्ठ मेभिस्वेऽसमन्वितः ।
 लिङ्गे रुक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥

व्यायाम शोषमें प्रायः अल्प शोष के समान लक्षण होते हैं तथा विना क्षते के भी उर-क्षत के लक्षण हो जाते हैं ॥

॥ ब्रण शोष ॥

रक्तक्षयाद्धेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणाद् ।
 ब्राणितस्य भवेच्छोषः सचासाध्य तमोमतः ॥

ब्रण वाले का शोष- रक्त के क्षय होने से, ब्रण की पीड़ा से, तथा आहार घट जाने से उत्पन्न होता है और यह असाध्य है ।

॥ उरः क्षत ॥

उरो विरुज्यते ऽत्यर्थं भिद्यतेथ विभज्यते ।
 प्रपीड्यते च तथा पार्श्वे शुष्यत्यंगं प्रवेपते ॥
 क्रमात् वीर्यवलं वर्णो रुचिरग्निश्चहीयते ॥
 ज्वरो व्यथा मनो दैन्यं विद् भेदो ऽग्निवधस्तथा

दुष्टः श्यावः सदुर्गन्धः पीतो विग्रथतो बहु ।
कास मानस्य चाभीक्ष्णं कफाः सास्टकं प्रवर्तत
स क्षीयते ततोऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसो क्षयम् ॥

॥ अत्यन्त साहसजन्य कार्यों से उत्पन्न होता है जिसमें रोगी को छाती बड़ी दूखती है, ऐसा मालूम होता है कि छाती को कोई विदीर्ण करता है अथवा दो टुकड़े किये जाऊता है । पसलियों में दर्द, सम्पूर्ण अंगों का सूखना, तथा रूप होंता है। क्रम से धीर्य, बल, धन्यं, रुचि, और जठराग्नि कम होते जाते हैं । स्वर की व्यथा, मनकी दीनता, दस्त का पतलापन, अग्नि का नाश ये होते हैं, खांसी के साथ, दूधित, काँजापन जिये, दुर्गन्धित, पीला, गाँठदार बहुतसा रुधिर युक्त कफ आता है । रोगी धीर्य और भोज के क्षय हो जाने से निरन्तर क्षीण होता जाता है ॥-

क्षय के
साध्यासाध्य लक्षण

सर्वे रूद्धे स्त्रिभिर्वापि ।
लिंगैर्मांसवत् क्षये ॥

युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोप्यतो न्यथा ॥

महाशनं क्षीयमाणं मतीसारनिपीडितम् ।

शूनमुष्कोदरं चैव यद्धिमणं परिवर्जयेत् ॥

शुक्राक्षमन्नदेषारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ।

कृच्छ्रेण बहुमेहन्तं यद्दमाहन्तीह मानवम् ॥

जिस रोगी के मांस और बल क्षीण होगये हों उस के सम्पूर्ण आधे या तीन ही लक्षण क्यों न हों परन्तु यह असाध्य है । और मांस और बल मौजूद होने पर चाहें सम्पूर्ण लक्षण हों परन्तु चिकित्सा के योग्य है । (१) जो क्षय रोगी अधिक भोजन करने पर भी क्षीण होता जावे जो अठिसार से पीड़ित हो, जिस के अरुचि कोय और उदर पर सूजन हो उस की चिकित्सा न करो । जिस क्षय रोगी के नेत्र सुफेद हों, अन्न में अरुचि, श्वास, मूत्रकण्ड हों यह असाध्य है ॥

ज्वरानुबन्ध रहितं बलवन्तं क्रियासहम् ।

उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् ॥

जो रोगी ज्वर रहित, बलवान, क्रियाश्री को सहने वाला, दीप्ताग्नि और लटा हुआ न हो उसे साध्य जान चिकित्सा करो ॥

अवधि परि दिनं सहस्रं तु यदि जीवतिमानवः ।

सुभिषग्भिरुपक्रान्त स्तरुणाः शोषपीडितः ॥

जो क्षय रोगी हजार दिन तक भी जीता रहे तो जानो कि रोगी तरुण है और इस की अच्छे चैर्षों से चिकित्सा की गई है । भावार्थ यह है कि अधिक से अधिक हजार दिन क्षयरोगी यदि बीघ में आराम न हुआ हो तो जीवित रह सकता है ॥

❀ दोष विज्ञान ❀

आयुर्वेद का दोष विज्ञान बड़ा महत्व पूर्ण विषय है इसे समझ लेना वैद्यों का आवश्यकीय कर्तव्य है। सम्पूर्ण ससार पञ्चतत्वमय है। और पञ्चतत्वों क गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध भी सबत्र दीक्ष पढ़ते हैं। पञ्चतत्व शब्दादितन्मात्राओं से और तन्मात्रा अहकार से अहकार प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। वास्तव में ये सब प्रकृति क काय रूप हैं। प्रकृति सत्व, रज, तम, इन तीन गुणों वाली है। ये तीन गुण ही रूपांतर से तीन दोष कदाते हैं। इन का विवेचन बड़ा कठिन है हम यहा पर तृतीय वैद्य सम्मेलन क समा पति श्रीमान् गणनाथ सैन जी क भाषण स त्रिदाप विज्ञान सम्बन्धी तार्त्विक विवेचन उद्धृत करते हैं।

शारीर क्रिया विज्ञान में त्रिदोषतत्व आयुर्वेदका एक अमूल बरत है मानसिक क्रिया विज्ञान क लिये सत्व रज तम ये त्रिगुण हैं चले ही शारीर क्रिया विज्ञान क लिये वातादि तीन दोष हैं। हम विषय क तर्कों का न समझ ना समझ जाग आयुर्वेद पर मिथ्या आक्षेप क्रिया करते हैं। परन्तु हमको आशा है कि कभी वह दिन आयेगा जब कि आयुर्वेद के इन तत्वों के विषय में सूक्ष्म दृष्टि जगत के सब ही विद्वानों के चित्त में सरय कल्पना प्रस्फुरित होगी।

इस समय वायु का अर्थ (Wind) विंड (हवा) पित्त का अर्थ वाइल अर्थात् पीले रंग का का तरल पदार्थ विशेष,

और, कर्क का अर्थ बलगत समझ कर ही लोग आयुर्वेद की अप व्याख्या करते हैं। वास्तव में त्रिदोष तत्त्वों से शरीर को स्वाभाविक क्रियाओं के तथा शरीर की विद्युत् अवस्था की क्रियाओं के पूर्व विंक्तिसां में भेषज प्रयोग करने के जो अपूर्व नियम बांधे हैं उन नियमों के एक बार समझने से महर्षियों का दिव्य ज्ञान देख कर सभी को विस्मित एवं मुग्ध होना पड़ता है।

प्रथमः स्मरण रजना चाहिये वातादि दोष शरीर में दो रूप से अवस्थित हैं। धातुरूप, और मलरूप। धातुरूप तीनों दोष, सूक्ष्म और इन्द्रियों के धातुवर हैं कवल क्रियाओं का देख कर इनका अनुमान हो सकता है। इनकी स्वाभाविक और विकृत क्रियाओं के लक्षण ऐसे स्पष्ट हैं कि जिन्हें देखकर सूक्ष्म दर्शी मनुष्य को धातुरूप दोषों की सत्ता अवश्य माननी पड़ेगी। और मलरूप वातादि स्थूल एवं इन्द्रिय गोचर हैं जिनकी सत्ता सभी स्थूलदर्शियों को भी स्पष्ट प्रतीत होती है।

सन्नेप से कहा जासका है कि " वा " गति गन्धनया" इस धातु से वायु शब्द बना है गति रूपी जिननी क्रियाये हैं वह वायु की हैं गति रूपी क्रिया शरीर में क्या हैं प्रधानतः गर्भ स्पर्श रूप रस गन्ध को मन के पास पहुंचाना और पेशियों में वेग उत्पन्न करके चेष्टाओं का करना ही गतिरूप क्रिया है जो कि पाश्चात्य मत में " सेन्सेशन " Sensation " मस्क्युलर एक्शन Muscular Action कहे जाते हैं। पित्त में जो कुछ संक्रन्दर विक्ल्पादि वृत्तियां होती हैं वे भी मनकी गतिरूप क्रिया है अतः वे भी वायु के कार्य हैं। पाश्चात्य मत में इसे 'इन्टेल्लेक्शन' Intrelllection कहा गया है। महर्षि चरक कहते हैं। ५५

वायुस्तन्त्र यन्त्रधरः प्राणोदानं समानं
 व्यानापान् प्रवर्तकं श्रेष्ठानां मुखावधानां,
 नियन्ता प्रणोता च मनसः सर्वेन्द्रियाणामु
 द्योतकं सर्वोन्द्रियाणामभिवोढा । च. सू. अ. १२

अर्थात् वायु शरीर के सब अंगों, और यंत्रों को धारण करता है, इन की क्रियाओं को चलाता है, इस वायु के प्राण, उदान आदि पांच स्वरूप हैं, हृदय, कण्ठ, उदर, त्वक् और गुह्य आदि स्थानों में इन के कार्य पृथक् २ स्पष्ट रूप से देखे जाते हैं । वायु ही बड़ी और छोटी सब क्रियाओं का प्रवर्तक है, एवं मन की कृत्तियों का निर्माणकर्ता तथा धालक है, वायु सब इन्द्रियों में चेतन्य देने वाला है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन क्रियाओं का धहन करता है इत्यादि । धरक के इस बचन को देख कित्त को न प्रतीत होगा कि पाश्चात्य पण्डित लोग जिसे "नर्वफोर्स" "Nerve force" कहते हैं । हमारे आचार्य्य, इस दुग्ध वस्तु को "वायु" कहते हैं । पद सक्त और नाही मण्डल अमरी शास्त्र का प्रसिद्ध नर्वस सिस्टम् ही है Nervous System ही है । बिजली का पंखा और बिजली की गाड़ी आदि अनेक लोगों ने नहीं देखी थी जब तक कहने से विश्वास नहीं हो सकता था कि बिजली के द्वारा ऐसे २ अपूर्व कार्य हो सकते हैं । अब अत्यन्त कार्य को देखकर मुटिया मजूर लोग भी बिजली की अपूर्व शक्ति को मन्व रहे हैं । ऐसे ही आचार्यों का कहा हुआ वायु का प्रमाण भी अब प्रत्यक्ष है । शक्य हो कर क प्रस्तिरक सुपुत्रादि को देखने से और जीवित प्राण पर माना विधि परीक्षा करने से प्रत्यक्ष देखने में आता है कि बिजली के समान कोई एक अपूर्व सर्वव्यापिनी शक्ति शरीर

में है जिस के प्रभाव से शरीर के सब बल कांटे चल रहे हैं । परन्तु अंग्रेजी मत से महर्षियों के मत का अमेद इतना ही है कि अंग्रेजी मतवालों ने नर्वफोर्स Nerve force को स्वीकार कर के उस का अज्ञेय कहकर छाड़ दिया है, और हमारे महर्षि ज्ञेयों ने अतीन्द्रिय ज्ञान से इस का स्वरूप बखान कर दिया है ।

**रूक्ष शीतोलघुः सूक्ष्मश्चरोथ विशद खर
विपरीत गुणैर्द्रव्यैर्मारुत सम्प्रशाम्यति ॥**

अर्थात् "वायु" रूक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद, और खर गुणों वाला है, इन के विपरीत गुण सम्पन्न द्रव्यों से वायु की शान्ति होती है । मूर्ख लोग समझते हैं कि वायु के गुण बर्धन स्व कपोल कल्पना है, विन्तु धेतनक विचार कर नहीं देखते हैं कि विपरीत गुण द्रव्यों से जो वायु की शान्ति हो रही है, केवल इस बात से ही महर्षियों के दिव्य ज्ञान की सत्त्वज्य प्रमाणित हो रही है ।

प्रकृतिस्थ वायु के विषय पर रपट कह के विकृत वायु के विषय में खरक पुनः लिखते हैं ॥

**"कुपितस्तुखलु शरीरं नानाविधैर्विकारै रुपत
पति, वल्लवर्णं सुखायुषामुपघातम्य भवति,
मनो व्यावर्त्तयति, सर्वेन्द्रियारायुपहति" इत्यादि**

अर्थात् कुपित वायु शरीर में ध्याग्मान, स्तम्भ, रौक्ष्य आदि नाना विध विकारों को उत्पन्न करता है, मनुष्य का बल, वर्ण सुख और आयु को नष्ट करता है । मन की विकृति उपजाता है इन्द्रियों की शक्ति को नष्ट करता है । इत्यादि ॥

इसी कारण अंग्रेजी में जिन रोगों को Nervous Debility, Neurosthenia, आदि नाम से निर्देश करते हैं। वेच लोग उन सब रोगों को वायु ही समझते हैं। और अंग्रेजी में जिस मनुष्य को Nervous neurotic या Hysterical कहते हैं हम लोग उन को वात प्रकृति कहते हैं। जिस बात प्रकृति का स्वरूप आचार्य्य लोग स्पष्ट लिख गये हैं "अधृतिरदृढ, सौहृद कृतप्र, वृश पुरुषो धमनो तते प्रजापो द्रुतगति रटनो नवस्थितारमा" इत्यादि (सु० शा० ४ अ०) इन सब बातों को देख कर कौन स्वोकार न करेगा कि श्रुति ज्ञान समग्र माड़ी मण्डल की विद्या का करामतक समान समझने थे और वायु इन दो अक्षरों में सब का अवरुध कर चुरू थे। अत एव सुधृत रूप कहता है कि "प्रस्पन्द नोहृद्वन पूरण विवेक धारण खल्लयो वायु मन्था प्रविभक्त शरीर धारयति" (सु० सू० अ० १५) अत रूप प्रतीत होता है कि वायु का अर्थ हवा नहीं है, शरीर में उदगार, अधो वायु आदि धानुभूत नहीं हैं यह मज भूत वारु रूप है इन क विषय में वायु का प्रसंग नहीं चजा है ॥-

पित्त- "तप सन्तापे" इस धातु से पित्त शब्द बना है।

शरीर में सन्ताप का मूल भूत जो कुछ सूक्ष्म अतीन्द्रिय वस्तु है "पित्त" उसी का नाम है। शरीर में जो कुछ तेजो गुण क कार्य करते हैं पित्त ही उन का परिचायक है। तेजो गुण के कार्य शरीर में कौन हैं? शरीर के स्वाभाविक सन्ताप रक्षा (जिस से शरीर का सन्ताप ६८ से ६९॥ डिगरी तक बना रहता है) और त्वक की शोषण शक्ति, अन्न का विपाक, मन की तेजस्विता, दृष्टि की उज्वलता और रक्त का उज्वल लालवर्ण, ये ही तेजो गुण के प्रधान कार्य शरीर में हैं। इन कार्यों के मूल भूत तत्वों को आचार्य्य लोगों ने अतीन्द्रिय ज्ञान से प्रत्यक्ष कर लिखा था।

घब्र अग्नेज लोग इसको कोई एक अक्षेय (Heat producing mechanism) सत्पाप देने वाला अतीन्द्रिय वस्तु कह कर पुकारते हैं। पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं कि निरन्तर शरीर में जा धातु जल हो रहा है। इसी धातु सय व धातु दाह से (Combustion) अग्नि गुण उत्पन्न हो कर शरीर का सन्ताप रक्षित होता है। चरक भी कहते हैं "अग्नि रेवदि पितान्तगन कुपिता कुपित शुभाशुभानि कराति स यदा नेन्धन युक्त जभते तदा देहज रस हितस्ति" इस वचन का अन्विष्टाय यह है कि अग्नि क प्रभाव सँ शरीर के सय धातुओं का निरन्तर क्षय होता जाता है। उस क्षय को पूर्ति के लिये आहार रूप इन्धन पहुचना चाहिये। अग्रजी मत क साध ऋषियों के मत का इतना सादृश्य रहने पर भी स्मरण रखना चाहिये कि अग्नि कवल आहार रूप इन्धन स ही शरीर में अग्नि गुण सम्पन्न सर्व व्यापी पित्त की मता का सूक्ष्मदर्शी महर्षि लोग स्वीकार करते हैं और कहते हैं "घात पित्त श्लेष्माण पव देह सम्भव हेतव परन्तु अग्रजी मत वाला अभी तक उतनी सूक्ष्मता को नहीं पहुँचे हैं। इस धातु भूत पित्त का गुण क्या है? जिस पर आचार्य्य लोग अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष करक कहते हैं ॥

सस्नेह मुष्णां तीक्ष्णां च द्रवमम्लं सरं कटु ।

विपरीत गुणैः पित्तं द्रव्यैराशु विशाम्यति ॥

--अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष कहने का अन्विष्टाय यह है कि यहुँत से निस्तृत पीत वर्ण तरल पदार्थ पित्त के विषय में यह लेख नहीं है। क्योंकि वस में यह सब गुण वर्तमान नहीं दीस पड़ते ऋषियों के अतीन्द्रिय ज्ञान की सत्यता का अनुमान अब भी इस प्रमाण से हो सकता है। उपरि लिखित गुणों के विपरीत गुण सम्पन्न

द्रव्यों के उपयोग से निपात हो पित्त की शान्ति है । कुपित्त पित्त के लक्षण आयुर्वेद में जिस प्रकार बड़े गये हैं यथा विस्फोटक, अमोदगार, ऊष्मा आदि अथ भी पित्त की शान्ति से शान्त होते हैं । अग्नेयी में जिसे वाइज कहते हैं वह मज रूप या किद रूप पित्त है । घातु रूप पित्त के साथ इस का अर्थ मिलाना बहुत भूल है इस मज भूत पित्त का लक्षण आयुर्वेद में इस प्रकार है।-

पित्तं तीक्ष्णं द्रवं पूति नील पीतं तथैव च ।
उष्णं कटुरसञ्चैव विदग्धं चाम्ल मेव च ॥
(सु० सू० अ० २१)

श्लेष्म " श्लिष आलिगत " इस घातु से श्लेष्मा शब्द आता है श्लेष्मा सोमगुणात्मक वस्तु है, पित्त के समान घातुभूत श्लेष्मा भी अतीन्द्रिय पदार्थ है । शरीर में तर्पण (तरावट रखना) श्लेषण (संयोजित रखना) पापण आदि सोमघातु के सब कार्य श्लेष्मा का ही है । पित्त यदि अग्नि रूप हो तो श्लेष्मा जल रूप है । केवल अग्नि से दाह मात्र होता है । जल से सब अग्नि की तीक्ष्णता दूर होती है । सब स्थानों पर तरावट पहुँचती है अतएव सुभ्रुताचार्य्य कहते हैं ।

सन्धि संश्लेषण स्नेहन रोपण पूरण वृंहण
तर्पण वलस्थैर्यकृत् श्लेष्मा पंचधा पुनि भक्त
उदक कर्मणानुग्रहं करोति ॥

अर्थात्-सन्धियों का संश्लेषण (तैल के सहश पदार्थ से चिकना रखना) स्नेहन (कण्ठ जिह्वादि स्थानों को ठर रखना)

अन्न का हृदय, धातुओं का पुरण और पोषणादि जल के कार्य से कफ शरीर की तरफ रहता है। यदि शरीर में इस श्लेष्मा की तराघट न रहे तो शरीर थोड़े ही दिनों में दग्ध हो जावे। अतीन्द्रिय श्लेष्मा यद्यपि एक ही है, तथापि प्रायः के अनुसार पित्त क संदेश इस के भी पांच विभिन्न रूप हैं जिन के नाम श्लेषक (Synovia) हृदक (Saliva) आदि, रखने गये हैं धातु रूप श्लेष्मा के अतीन्द्रिय रूप का प्रत्यक्ष रूप के प्राचार्य कहते हैं कि :-

गुरुशीत मृदुः स्निग्ध मधुर स्थिर पिच्छितां।
श्लेष्मणाः प्रथमं यान्ति विपरीत गुणैर्गणाः ॥

महर्षियों के इस उपदेश की सत्यता चिकित्सा के समय सभी को प्रत्यक्ष प्रतीत होती है, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि नासिका और मुख से जो श्लेष्मा गिरती है वह किट्ट या सज रूप है और उसके विषय में श्लेष्मा का शरीर धारकत्व नहीं कहा गया है, सुतलं धातुभूत कफ पित्त वायु के ही विषय में कहा गया है :-

विसर्गादान विज्ञैपैः सोम सूर्या निला यथा ।
धारणन्ति, जगद्देहं कफ पित्तानिलास्तथा ॥

अर्थात् विसर्ग, आदान और विज्ञेय से (तर्पण, शोषण, संघारण) चन्द्र, सूर्य और वायु जिस प्रकार जगत को धारण

करते हैं उसी प्रकार कफ पित्त और वायु भी शरीर को धारण करते हैं मल, मूत्र वायु, पित्त, कफ के विषय में स्पष्ट ही निर्देश दे कि :-

पक्वाशयन्तु प्राप्तस्य शोपमानस्य विहिना ।
 परि पिरिडित पक्षस्य वायुः स्यात्कट्टुभाविता ॥
 किट्टमन्यस्य विरामूत्र रसस्य चकफो ऽसृजः ।
 पित्तं मांसस्यच मलो मलः स्वेदस्तु मेदसः ॥

(चरक)

वायु पित्त, कफ के विषय में शेष का वक्तव्य कहते हैं कि वायु पित्त कफ केवल शरीर के ही तीन स्तम्भ रूप हैं यही नहीं किन्तु समग्र आयुर्वेद में हेतु लक्षण, औषध के तीन स्तम्भ खरूर हैं । मनुष्य का वयः श्रम अहोरात्रं, पट्ट धृतु, अन्न विपाक आदि सभी में वात पित्त कफ का प्रभाव महर्षियों ने स्पष्ट प्रतिपन्न किया है । जिस से फार्म में पूरी २ सहायता मिलती है ॥

क्षयरोग की चिकित्सा

❀ स्वास्थ्यभवनों की आवश्यकता ❀

१

क्षयरोग जैसा कठिन है वैसे ही इस की चिकित्सा भी कठिन है। क्षयरोग की चिकित्सा ऐसी नहीं है, जिसे साधारण वैद्य कर सके। क्षयरोग की चिकित्सा करने में ही वैद्यों की कार्य कुशलता और महत्प्रशक्ति देखी जाती है। क्षयरोग की आदि अवस्था में अच्छे वैद्य द्वारा चिकित्सा हो और उपचारक आदि श्रेय चिकित्सा के तीन पाद भी उत्तम हों तो रोगी कदाचित् बच सकता है। रोगी के दुर्बल होने पर रोग से मुक्त पाना कठिन नहीं किंतु असम्भव है, जोक में यह बात प्रसिद्ध है, कि तपेदिक और राजपक्ष्मा से रोगी बच जाये तो यह समझो कि रोगी को यह रोग ही न थे। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में लिखा है:-

परिदिनमहसंनु यदि जीवति मानवः ।

सुनिपाभिरुप क्रान्तः तरुणः शोषपीडितः ॥

अर्थात्—यदि शोष यात्रा रोगी सहस्र दिन तक जीता रहे तो यह जानो कि रोगी तरुण है और उसकी चिकित्सा अच्छे वैद्य द्वारा की गई है।

इस से भावार्थ यह निकलेता है कि कदावाक रोगी क्षयरोग की आदि अवस्था में अच्छी चिकित्सा होने पर सुधर सकता

हैं। भारत वासी शारीरिक शान्ति और प्रायः दरिद्री होते हैं। उन को बहुत दिनों तक यह मालूम ही नहीं पड़ता कि हम को क्षयरोग है और साधन हीन होने से क्षय की आदि अवस्था में ठीक चिकित्सा भी नहीं कराते।

इस ही से अधिकांश भारत वासी क्षय रोग से मृत्यु पाते हैं। क्षयरोग में बहुत सी औषधियाँ खाने से ही लाभ नहीं होता जब तक रोगी को उत्तम वायु साफ पानी, धूलिष्ट आहार और आनन्दिक सुख न हों तब तक हजार अच्छी २ औषधियाँ खाने पर भी क्षयरोगी नहीं बच सकता।

वर्तमान समय में साधारण अवस्था वाले मनुष्यों को उपरोक्त बातें बहुत ही नहीं मिलती। उन क रहने सहने क मकान अपवित्र होते हैं तथा उत्तम आहार विहार क लिये धन न होने से वे अपनी चिकित्सा का प्रबन्ध ठीक २ नहीं कर सकते। इस ही से बहुत क्षयरोग से अधिक अकाल मृत्यु होती है। अमेरिका, जर्मनी, इंग्लैंड आदि देशों में क्षयरोगियों के लिये राजा और प्रजा की तरफ से अच्छे २ चिकित्सालय स्थापित हैं। जिन में क्षयरोगियों के लिये उत्तम वायु, साफ पानी और भोजन मिलता है चिकित्सा भी बड़ी साधनी से की जाती है इस से बहुत से क्षयरोगी बच जाते हैं। भारतवर्ष में भी स्वर्ण वासी भारत सम्राट् श्रीमान् सप्तम पदपद महाराज के स्मारक में धर्मपुर (शिमला) में क्षयरोगियों के लिये ऐसा ही शफाखाना स्थापित हुआ किन्तु इतने बड़े देश में एक शफाखाने से काम नहीं चल सकता प्रायः सम्मति शाली धनी लोग ही चिकित्सा के लिये जाते हैं साधारण मनुष्य वहाँ पहुँच भी नहीं सकते ऐसे शफाखानों की देश में बड़ी आवश्यकता है भारत वर्ष के राजा महाराजा और दानी लोग यदि ऐसे कार्यों में अपने धन का उपयोग किया करें तो भारतवासियों को बड़ा लाभ पहुँचे।

यदि भारत वर्ष में क्षयरोग से नौ जवानों और निर्धनों की रक्षा करनी है तो प्रत्येक प्रान्त में अथवा पहाड़ी स्थानों या समुद्र के समीप ऐसे आरोग्य भवन स्थापित होने चाहिये। जिन में निर्धनों के लिये उत्तम स्थान अच्छा खाना पीना और औषधियाँ बिना मूल्य मिल सकें। क्योंकि जिन मनुष्यों को भर पेट भोजन को नहीं मिलता, सोने के लिये चार यास फी कोपड़ी नहीं मिलती, रात दिन पेट भरने की चिन्ता ही सताती रहती है, ये अपने जीवन को इस दुष्ट रोग से कैसे बचा सकें।

देश के दानियों ? यदि आप अपने धन से उत्तम पुण्य व्यवसाय करना चाहते हैं तो ऐसे सार्वदेशिक उपयोगी कार्यों में अपना हाथ लगाइये। भारत वर्ष में दान अथ भी बहुत होता है किन्तु वह आंश मीच कर केवल नाम के लिये होता है पात्र कुपाय और आवश्यकता की ओर दानियों का बहुत कम ध्यान जाता है। जहाँ दश धर्मशाला बनी हैं वहाँ ही स्मारकवादी बनती है। भारतवर्ष के दानियों की ओर से कितने आरोग्य भवन स्थापित हुये हैं ? देशवासियों को अपनी आवश्यकताओं का ध्यान रख कर दान करना चाहिये। दीन और निर्धन क्षयरोगियों की रक्षा तब ही हो सकती है जब कि उन के लिये क्षयरोग मिटाने वाले आरोग्य भवन स्थापित हों क्यों कि बिना धन के साधन रहित होने से ऐसे लोगों की क्षय की पहली अवस्था में भी चिकित्सा नहीं हो सकती इस से उन विचारों की प्रायः अवकाश मृत्यु ही होती है।

विदेश में स्थापित हुये क्षयरोग के आरोग्यालयों का होना देखने से जाना जाता है कि प्रतिशतपचीस रोगी बिलकुल निरोगी और पचास प्रतिशत बहुत अच्छे होकर निश्चयते हैं।

जो रोगी ऐसे स्वास्थ्य भयनों में रोग की प्रथमावस्था में ही बने जाते हैं उन में प्रतिशत ७०।७५ रोग मुक्त हो जाते हैं ।

बहुत से लोग यह सन्देह करते हैं कि आरोग्य भयन से निकलने के पश्चात् थोड़े दिन पीछे रोग मुक्त मुख्य फिर रोगी हो जाता है, किन्तु विदेशी आरोग्य भयनों का निम्न लिखित लेखा इस सन्देह को भी टिकने नहीं देता ।

(१) फॉकनस्ट्रीम आरोग्यालय से—६६ रोगी स्वास्थ्य होकर निकले और निकलने के पश्चात् ३ वर्ष से लगाकर ६ वर्ष के बीच जांच करने पर ७२ मनुष्य निरोग पाये, शेष १५ दुबारा रोगाक्रान्त हुये । परन्तु इन में से भी १२ फिर दय गये और १५ रोगी मर गये ।

(२) ब्रेडर के स्वास्थ्य भयन में ६५ रोगी रोग रहित होकर निकले उन में से पांच २१ वर्ष से २६ वर्ष पर्यन्त पामन, १२ से २१ वर्ष पर्यन्त ३८, सात से बारह वर्ष पर्यन्त निरोगी और जीवित रहे ।

इन लेखों के विचार करने से यह बात स्पष्ट होती है कि इस दुःसाध्य रोग से अधिकांश रोगी आरोग्य भयनों में रह कर चिकित्सा कराने पर बच सकते हैं, क्षयरोग से मनुष्यों को बचाने के लिये अमेरिका में २०० से अधिक मेडा समितियां स्थापित हैं, ऐसी समितियां क्यालयान देहा नकरो दिखाकर क्षय सम्बन्धी छोटी २ पुस्तकें बाँटकर, मिट्टी के टुकड़े बना कर और अन्य उपायों से सर्व साधारण मनुष्यों को समझाते हैं कि—

यह रोग (क्षय) बड़ा कठिन है, इस से हम किस तरह बच सकते हैं, क्षयरोगियों को किस प्रकार रहना चाहिये आदि, ऐसी

समितियों क्षयरोगियों को आरोग्य भवनों में पहुँचाती हैं और दीन क्षयरोगियों को सब प्रकार का खर्च देकर उन्हें आरोग्य भवनों में भेजती हैं ।

जर्मनी, स्विट्जरलैण्ड, फ्रान्स और इंगलिस्तान में भी क्षयरोगियों के लिये स्पेशल आरोग्यभवन स्थापित हैं और इन से प्रति वर्ष सहस्र २ रोगी स्वास्थ्य रूपी सुधा को प्राप्त करते हैं । बड़े आश्चर्य की बात है कि जो भारतवर्ष जनसंख्या तथा भूमि-माप में सब देशों से बड़ा है जिस में सर्वोत्तम अन्न वायु और स्थान प्राप्त होते हैं । जहाँ पर दीन धन हीन क्षयरोगियों की दुःख भरी धाह्य चारों ओर से सुनाई पड़ती है वहाँ ऐसे आरोग्यभवन क्यों स्थापित नहीं होते ? जब तक देशवासियों का ध्यान इस ओर न जायगा भारतवर्ष में क्षयरोग का डंका इस ही प्रकार बिरता रहेगा और हमारी चींचपड़ दुःख भी न बजेगी ।

आरोग्य भवन कैसे होने चाहियें ।

आरोग्य भवन ऊंचे स्थान पर, बनाये जावे, जो समुद्र की सतह से कम से कम ३॥ हजार और अधिक से अधिक ७ हजार फीट ऊंचा हो ।

- (१) आरोग्य भवन का कुल काम एक योग्य अनुभवी और दयालु वैद्य की अधीनता में हो ।
- (२) मकान साफ़ सुखरे और हवादार हो ।
- (३) छी और पुष्टियों के लिये अलग २ स्थान हों ।
- (४) प्रत्येक रोगी अलग २ कमरे में रक्खा जावे ।
- (५) ज्वररोगी के कमरे में दूसरा मनुष्य न सोवें और न किसी प्रकार की रोशनी ही की जावे । शरदऋतु में भी ताजी हवा आने के लिये सम्पूर्ण खिड़कियां खुली रक्कीं जावें ।
- (६) रसोई घर, भोजनालय, मिश्रों के लिये स्थान, पाखाना, घोषी खाना आदि सब स्थान आरोग्यालय से दूर बनायें जावें ।
- (७) मकान को अधिक सजाने की आवश्यकता नहीं है सामान और फर्नीचर जितना थोड़ा होवे उतना ही अच्छा ।
- (८) वैद्य का बंगला एक ऊंचे स्थान पर हो, जहाँ से वह रोगियों की स्थिति प्रति समय देख सके ।
- (९) आयुर्वेद भवन की छड़कें मुख्य प्रवण्य से उतार चढ़ाव की बनाईं जावें ।

क्षयरोग की प्राकृत चिकित्सा



क्षयरोग में औषधियाँ सेवन करने से रहना लाभ नहीं होता जितना कि प्राकृत चिकित्सा से। आज के बड़े-बड़े डाक्टरों का मत है। कि क्षयरोग में औषधियाँ सेवन करने से कुछ भी लाभ नहीं होता वे कहते हैं कि :-

Nature, a Mother, kind alike to all, still grants her bliss at Elubours carinest call.

अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियों पर एक समान प्रेम रखने वाली एक अति मायावी दिव्य माता के समान प्रकृति, उद्योग-शील पुरुषों को सर्वत्र प्रमोद सुख प्रदान करती है। प्रख्यात डाक्टर टर्नर इस विषय में कहते हैं कि :-

“ हे प्रिय क्षयरोगी ! यदि तुम्हें ऐसी आशा हो कि कोई चमत्कारिक औषधि निकल पाये कि जिस के सेवन करने से शीघ्र क्षयरोग नष्ट हो जाय तो ऐसी आशा दुःशामात्र है। रोग नष्ट करना तुम्हारे ही हाथ में है, अपनी साहस, व्यवहारिक विवेक बुद्धि, और निरन्तर लायधानी इन्हीं के ऊपर रोग मिटाने का आधार है। यह स्वयं बात तुम्हारे हृदय में जितनी अल्टी इट हो जाये, उस में ही तुम्हारा दित है”। इस ही प्रकार औषधी

बहुत मे डाक्टरों का मत क्षयरोग में औषधियां न खिलाने के पक्ष में है । वे कौश्लियरभ्रायज, पक्कल टूफस औफगीर, ट्यूबर्जिम, ट्यूबरक्युलोजायन, आदि औषधियों को क्षयरोग में देना चाहियात बतजाते हैं । और न इन का मत क्षयरोग में किसी प्रकार के मांस रस या मांस सिद्ध औषधियां खिलाने का है ।

तात्पर्य यह है कि क्षयरोगी जब उसे माजूम हो कि मुझ में क्षयवा घंड़ुर जम गया तब ही से उत्तम वायु, साफ़ पानी, योग्य आहार विहार और मानसिक सुख पाने का सब में पक्षिं प्रदन्ध करे ।

यदि माहृतिक उपायों के साथ किसी अच्छे वैद्य की औषधियां सेवन की जायें तो क्षयरोग में अति काम पधुंन सकता है । अन्यथा क्यल औषधियां ही खिलाने रहना फूले में डाअने के सम'ग है । डाक्टरों का ही पड मत नहीं, किन्तु आयुर्वेदीय ग्रन्थों का भी है ।

क्षयरोग ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण रोगों में पथ्य मे रहना आरोग्यता प्रदान करता है । आयुर्वेदीय ग्रन्थ स्वयं कहते हैं कि :—

पथ्येसति गदार्तस्य किमौषधिनिंपत्रणैः ।

अर्थात्-बिना औषधि सेवन किये केवज पथ्य काने से ही रोग नष्ट हो जाता है । वैद्य लोग मन्तिशन आदि उरों में बहुत दिनों तक औषधियां न खिलाने रोगी को प्रहृति क ऊपर ही द्वाइ देते हैं । केवज गरम पानी पीकर पथ्य पुर्यक रहने से मैरुहों रोगी आरोग्य काम कराने हैं । इनलिये रोगियों को आदिने कि वे क्षयरोग मिटाने के लिये प्राकृत माधनों की ओर सब में पडने प्रधान रफे और उन्हें काम में लायें ।

❀ शुद्ध वायु ❀

स्यरोग फैफड़ों की बीमारी है और फैफड़ों की सुराक शुद्ध वायु है । यदि रोगी को ताज़ी वायु नहीं मिलती तो जानें कि उस का आरोग्य होता दुर्लभ है । ताज़ी वायु बड़े शहरों और घनी आबादी में नहीं मिल सकती । इसलिये छोटे शहर, पहाड़, या समुद्र के किनारे पर रहना आवश्यक है । इन स्थानों पर बने जाने से ही ताज़ी वायु नहीं मिल सकती किन्तु वहाँ ऐसे मकानों में रहना चाहिये कि ताज़ी वायु का पूरा लाभ रोगी को मिल सके । जिस मकान में स्य रोगी रहे उस में छोटी खिड़कियाँ न हों । क्योंकि वायु के झोंके ऐसे रोगियों को नुकसान पहुँचाते हैं । मकान के लंबे दरवाजे बड़े हों जिस से ताज़ी वायु आसानी से आ सके और खराब वायु बाहर निकल सके ।

यदि रोगी में बल होवे तो शुद्ध वायु पाने के लिये मकान में घुमा न रह कर बाहर मैदान में टहला कर । स्य रोगी को ताज़ी वायु में रहना सहना उठना बैठना आदिये । वेद्योगों में ऐसी पूरी परिपाटी बतलाई है कि वे एकर वाले तथा स्य रोगी को ताज़ी वायु, नहीं लगने देते । ताज़ी वायु रोगी के लिये शत्रु क्षिप्त होती है, बहुत से घैघ्र के घेरी कोटारियों में (जिन्हें हम शत्रु समझते हैं) रोगियों को साजकर मार जाते हैं, यह उन लोगों की भूल है ॥

स्य रोगवाले के लिये शुद्ध वायु और सन्दी का मोम तथा समुद्री वायु वही लाभदायक है । शीत ऋतु में दिनाधिक्रिया किये भी रोगी की शक्ति बढ़ती जाती है । यह फल प्राप्त करने के लिये कि—

साफ़ पानी

जिस प्रकार अन्य रोगों में साफ़ पानी पीने की आवश्यकता है वैसे ही क्षयरोग में भी साफ़ पानी पीना चाहिये । साफ़ पानी का मनुष्य के स्वास्थ्य में घनिष्ठ सम्बन्ध है । क्षयरोग की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में विशेष रीति से अन्न पिजावे ।

(१) यदि क्षयरोगी को ज्वर आता हो तो पानी को गरम करके द्वाभकर पिजावे । बहुत से डॉक्टर गरम पानी पिजाने से सहमत नहीं हैं वे कहते हैं कि पानी को गरम करने से पानी की जीवनीय शक्ति नष्ट हो जाती है परन्तु यह उन का भ्रम है । गरम पानी ज्वर नाशक प्रयोगों में प्रधान है । पानी को गरम करने से उस में मित्रे पार्थिव परमाणु दूर होजाते हैं । क्षयरोग के लिये पानी इतना औंटाया जावे जिस से उस में दो तीन डफ़ान आजावे । पीछे साफ़ करके किसी मिट्टी के घरतन में भरकर शीतल करके रोगी को पिजावे :-

(२) यदि रोगी को दाह अधिक हो और ज्वर न हो वं अच्छे कुए का पानी (जिस कुए में फूड़ा करकट या वृद्ध के पक्षे न पड़ते हों, पानी ज्यादा लिचता हो, घरसात का पानी न जाता हो) बिना औंटा हुआ केवल साफ़ करके ही पिजावे-टिकटियों पर घड़े रखकर और उन से पानी टपकाकर अथवा पानी को साफ़ करने वाली बोतलों से पानी साफ़ करके (ये बोतलें विजायत रो मसाले की बनी आती हैं पानी में डालने से बोतल के भीतर च्यूचूर साफ़ पानी भर जाता है) या भभके से खींच कर फिर ठाँदा कर के पीवे-

(३) यदि रोगी को काली ज्वाला उटती हो और कफ नहीं निकलता हो । भूख कम हो तो अद्द से कं संवर्ण को जला कर इसके कौयलों से पानी साफ़ करके (टिकटियों द्वारा) रोगी को पिजावे यह पानी किञ्चित् नुगधरा होता है पाँच सात रोज़ पीने से कफ़ घासानी से निकलने लगता है गला साफ़ होता है, जिस रोगी का मूत्र के साथ धीर्य जाता हो वह इस जल को न पीवे ।

(४) मजाब रोध रहनेवाले दाय रोगी को द्राक्षा (मुनकों) का जल बड़ा लाभ देता है पीस सेर पानी में एक सेर मुनकके या अमूर डाल कर दो दिन भिगोवे पीछे भमके से धर्क खींचे इस पानी को कूँप के साफ़ पानी में मिलाकर रोगी को पिजावे ।

(५) जिस रोगी को वस्त पतले होते हों उसे घाय के फूलों का अर्क साफ़ पानी में मिला कर पिजाने से बहुत लाभ होता है ।

आहार

आहार ही मनुष्य का जीवन है। सय घाजे को उत्तम आहार की योजना करना भी बटिन काम है। क्यों कि प्रायः सय घाजे दुर्बल, और चीन्चड़ स्वभाव घाजे हो जाते हैं और खाने में उन की स्वाभाविक रुचि रहती है मार २ खाने से घबड़ाते हैं। इसलिये सयरोगियों को ऐसा आहार खिलावे जिससे वह रुचि से खा सकें हम यह नहीं कहते कि सयरोगियों को बिना लाभ हानि देखे स्वादिष्ट मात्रा भर पेट खिला दिया जाये जिसे वे न पचा सकें और उलटे लेने के देने पड़ जाय तात्पर्य यह है कि चिकित्सक को चाहिये कि दितरस्तुओं वा सुखादु आहार बनवाकर थोड़ी मात्रा से रोगी को खिलायें सब से पहले वैद्य को रोगी की भूक और रुचि की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये रुचि बढ़ाने के लिये सय से उत्तम उपाय ताजी स्वत्तवायु का सेवन करना है यदि रोगी में घल हो ती थोड़ी सी कसरत यानी प्रातः सायं वायु सेवन कर ऐसा करने से भूक बढ़ने लगती है।

भूक लगने के लिये कोई साधारण औषधि सेवन करते रहना भी अच्छा है, बहुत से हकीम सयरोगी की भूक बढ़ाने के लिये लहसन का खाना लाभदायक बताते हैं किन्तु जिन की कफ प्रकृति हो और तीक्ष्ण वस्तुओं का सेवन कर सकते हों वेही इसे थोड़ी मात्रा में सेवन करें। डाक्टर लोग दुर्बल रोगियों की भूक बढ़ाने के लिये शराब देना अच्छा समझते हैं, परन्तु

हम तेरी सुग जिह्व में केवल नशा ही तो सयरोगियों को देना पसन्द नहीं करते । हाँ सयरोग म रित, द्राक्षसत्र आदि अरिष्ट, आलस्य रोगी के लिये मध के स्थान म दिये जायें तो कोई हानि नहीं है ।

चिकित्सक के लिये यह आवश्यक शीघ्र बान है कि रोगी को कमजोर न होने दे । जो वैद्य सयरोगी का जनैः २ पत्र बढ़ाता है वह उसे आरोग्यता की तरफ लंजाना है । रोगी का बल बिना आहार के नहीं बढ़ सकता । थोड़ा २ घार २ आहार खिलाणा सयरोगी का बड़ा लाभ पहुंचाता है । बहुत से लोग यह आक्षेप करते हैं कि आधुनिकीय चिकित्सक कयल जंघनयाभूषणकी दाज बधनासुखी रोटी ही आहार देने में पड़े है । परन्तु यह बात शास्त्रीय प्रक्रिया को छोड़ ऊटपटांग इलाज करने बन्तों की है । शास्त्रों में, सय रोगियों को अनेक प्रकार क घृत, दुग्ध, मांस रस, यूप, शाक, फल आदि देने लिखे हैं और विद्वान वैद्य इन्हें देते भी हैं । ऐसे आहार से रोगी का बल क्षीण नहीं होने पाता- प्रत्युत धीरे २ रोगी, स्वास्थ्य लाभ करता है । हम इन आहारों की प्रक्रिया यहां बतलाते हैं ॥



शास्त्रों में बकरी का दुग्ध, घृत, मांसरस देना बड़ा लाभ दायक लिखा है । गाय का दुग्ध भी लाभप्रद है परन्तु बकरी का सर्वोत्तम । यदि बकरी या गाय को मिलाय, अट्टसा, खिला कर दुग्ध लिया जाये तो और भी विशेष लाभ देता है । रोगी को जिस विकारकी अधिकता हो उसकी नाशक वनस्पति मिला कर दुग्ध लेना चाहिये यदि बल बढ़ाना हो तो गोक्षुरादि या अश्वगन्धादि चूर्ण, जौ के चूने के साथमिला रोटी बनाकर गौ या बकरीको खिलाकर दुग्ध लेना चाहिये । यदि रोगी को दाह अधिक हो और धातु क्षयती जाती हो तो कच्चे दुग्ध के फेन या धारोष्ण दुग्ध पिजाना



बड़ा लाभदायक है। दुग्ध का क्षीर पाक [बराबर या द्विगुण जल मिला मन्द अग्नि से पकाकर दुग्ध मात्र शेष रहने] बना कर पिजाना भी बहुत गुणदायक है, क्षीर पाक बनाते समय औषधियां भी डाली जाती हैं। क्षीरपाक प्रायः रात्रि में पिजाते हैं। दिन में भी घांठार पिजावा जावे तौ और अच्छा ॥

ज्वरघ्न क्षीरपाक- यदि ज्वर वाले को ज्वर को अधिकता हो तौ क्षीर पाक बनाते समय गिलोय, पीपल, मुनक्का, डालकर दुग्ध औटावे। शुद्धमान पीपल से धातुओं में प्रविष्ट हुआ ज्वर निकल जाता है। एकर पीपल तिन्य बढ़ा कर २१ पीपल तक बढ़ावे और फिर एकर घटाता जावे। पहले समय में पांच २ पीपल बढ़ाकर सौ सौ पीपल तक तिन्य दुग्ध मडाल कर और औटाकर पिजाते थे। अब भी हम ने बहुत से रागियों को पचास २ पीपल तक पिजाया है। पीपलों का प्रयोग ज्वर नाश करने में अद्वितीय है। रोगी की प्रकृति और बल देख कर पीपलों का प्रयोग करे ॥

कासघ्न क्षीरपाक- खांसी को अधिकता में दुग्ध के साथ, मुनक्का, गिलोय कसटकारी, आदि औषधियां डालकर औटावे। अट्टनेकी जड़ का बकडुल भी डालना अच्छा है। मुत्तेहठी का चूर्ण जब खांसी सूखी हो तब डाले। यदि खांसी क साथ, पार्श्व शूल हो तौ दशमूल या, पंच्य मूल डाले। यदि खांसी क साथ खून आता हो तौ पीपल की जास दुग्ध में डल ॥

बलिष्ठ क्षीरपाक- बल बढ़ाने क निम्न क्षीरपाक म, धंशलोचन, इलायचा, मुनक्का, डाले, जपह चूर्ण का क्षीरपाक क साथ जावे—


मद्य

 डाक्टर लोग दुर्बल रोगियों की छुटा बढ़ाने के लिये भोगन क साथ घोही २ सुरा पिताना अच्छा समझत है परन्तु अच्छे २ बेश और हकीम इसे हानिकारक बन ताकर पीने की आज्ञा नहीं देते । हां आयुर्वेदीय ग्रन्थों में औषधस्वरूप द्राक्षाजस्य, द्राक्षारिष्ट, उशीरासस्य, दशमूतानस्य आदि क्षयरोगियों को खवन करने के लिये वर्णन किये हैं और इन को आहार न समझ कर औषधस्वरूप खवन करना चाहिये । ये असब शराब की तरह दुर्गुण नहीं करते किन्तु रोगी को बड़ा लाभ पहुंचाते हैं ।


मांस

 डाक्टर लोग मछली के तेज को इस में परम लाभदायक समझते हैं । आयुर्वेदाय ग्रन्थों में भी इस रोग पर बकरे का मांस आहार और औषधि दोनों में हित माना गया है । क्षय रोगियों को जोकि मांसाहारी हैं इस से लाभ भी पहुंचना देखा है । हम मांस खाने क पक्षपाती नहीं हैं, दुध, घृत, मन्खन आदि पदार्थ भी मांस से कम लाभदायक नहीं हैं । परन्तु आयुर्वेदीय शास्त्र सार्वभौमिक चिकित्साशास्त्र हैं । संसार में सब प्रकार क मनुष्य हैं इस ही लिये आयुर्वेदीय ग्रन्थों ने सब लोगों की प्रकृति को विचार कर आहार की योजना की है ।

जो मांसाहारी पुरुष हैं जिन्हें मांस खाने में रुचानि नहीं है वे अपनी इच्छानुसार बकरे के मांस का रस, सत्व, आदि खासकते हैं । परन्तु कताहारी पुरुषों को इन्व ने लाभ के स्थान में हानि होगी । उन्हें रुचानि होकर ग्रन्थ उक्तम भोजन में भी रुचि होजायगी । जहां तक ही सब मनुष्यों को दुःखादि सेवन कर अपने जीवन की रक्षा करनी चाहिये ।

बड़ा लाभदायक है। दुग्ध का क्षीर पाक [बराबर या द्विगुण जल मिला मन्द अग्नि से पकाकर दुग्ध मात्र शेष रहने] बना कर पिजाना भी बहुत गुणदायक है, क्षीर पाक बनाने समय औषधियां भी डाली जाती हैं। क्षीरपाक प्रायः रात्रि में पिजाते हैं। दिन में भी खाडार पिजाया जावे तो और अच्छा ॥

ज्वरघ्न क्षीरपाक- यदि ज्वर वाले को ज्वर की अधिकता हो तो क्षीर पाक बनाने समय गिलोय, पीपल, मुनक्का, डालकर दुग्ध औटावे। बुद्धमान पीपल से धानुओं में प्रविष्ट हुआ ज्वर निकल जाता है। एकर पीपल नित्य बढ़ा कर २२ पीपल तक बढ़ावे और फिर एकर घटता जावे। पहले समय में पांच २ पीपल बढ़ाकर सौ सौ पीपल तक नित्य दुग्ध में डालकर और औटाकर पिजाते थे। अथ भी हम ने बहुत से रोगियों को पचास २ पीपल तक पिजाया है। पीपलों का प्रयोग ज्वर नाश करने में अद्वितीय है। रोगी की प्रकृति और बल देख कर पीपलों का प्रयोग करे ॥

कासघ्न क्षीर पाक- खांसी की अधिकता में दुग्ध के साथ, मुनक्का, गिलोय कण्टकारी, आदि औषधियां डालकर औटावे। अइसेकी जड़ का बकडुल भी डालना अच्छा है। मुजेहठी का चूर्ण जब खांसी सूखी हो तब डाले। यदि खांसी के साथ, पार्श्व शूल हो तो दशमूल या, पञ्च मूल डाले। यदि खांसी के साथ खून आता हो तो पीपल की जास दुग्ध में डालें ॥

बलिष्ठ क्षीर पाक- पत्र बढ़ाने के लिये क्षीरपाक में, गंशलोचन, इलायची, मुनक्का, डाले, जलकण्टिकचूर्ण को क्षीरपाक के साथ फाके—

डाक्टर लोग दुर्गत रोगियों की सहायता बढ़ाने के लिये
मद्य गोजन के साथ थोड़ी २ सुपा पिताना अच्छा स-
 मझन है परन्तु अच्छे २ बेय घोर हकीम इसे हा-
 निकारक बनताकर पीने की आज्ञा नहीं देते । हां आयुर्वेदीय
 ग्रन्थों में औषधस्वरूप द्राक्षाज्य, द्राक्षारिष्ट, उशीरासव, दश-
 मूतासव आदि क्षयरोगियों को सेवन करने के लिये वर्णन किये
 हैं और इन को आहार न समझ कर औषधिस्वरूप सेवन करना
 चाहिये । ये आसव शराब की तरह दुर्गुण नहीं करते किन्तु
 रोगी को बड़ा लाभ पहुंचाते हैं ।

डाक्टर लोग मछली के तेल को इस में परम लाभ
मांस दायक समझते हैं । आयुर्वेदाय ग्रन्थों में भी
 इस रोग पर बकरे का मांस आहार और औषधि
 दोनों में दित माना गया है । सय रोगियों को जोकि मांसाहारी हैं
 इस से लाभ भी पहुंचना देखा है । हम मांस खाने के पक्षपाती
 नहीं हैं, दुध, घृत, मखन आदि पदार्थ भी मांस से कम लाभ
 दायक नहीं हैं । परन्तु आयुर्वेदीय शास्त्र सार्य भौतिक चिकित्सा
 शास्त्र हैं । संसार में सब प्रकार के मनुष्य हैं इस ही लिये
 आयुर्वेदीय ग्रन्थों ने सब लोगों को प्रकृति को विचारकर आहार
 की योजना की है ।

जो मांसाहारी पुरुष हैं जिन्हें मांस खाने में ग्लानि नहीं है वे
 अपनी इच्छानुसार बकरे के मांस का रस, सन्, स-
 सकते हैं । परन्तु फतालागी पुरुषों को इस से बचने के लिये
 हानि होगी । उन्हें ग्लानि होकर अन्य दमन मंडल से रोग
 रुचि होजायगी । जहां तक ही सब मनुष्यों को सुखी सेवा
 कर अपने जीवन की रक्षा करनी चाहिये ।

धारोप्य दुग्ध | जिन रोगियों को दाह पचिष्ठ रहता हो धानु निरन्तर सूत्रता आती हो, निर्बलता और रूक्षता बढ़ती हो उन्हें धारोप्य दुग्ध बड़ा लाभदायक है। यद्यपि कच्चे दुग्ध में डाक्टर लोग कौटाहुओं का होना मानते हैं। परन्तु हमने अनेक रोगियों को इससे बड़ा लाभ होता देखा है। एक रोगी जो बहुत दुखी था और दले शय का अंकुर नीत चार महीने से ही उत्पन्न हुआ था इस धारोप्य दुग्ध से ही धोड़े दिनों में चंगा हो गया। जिस रीति से इस रोगी को तथा अन्य रोगियों को हमने धारोप्य दुग्ध पिनाया है उसकी विधि लिखते हैं ॥

1. जिस गाय का दुग्ध लिया जावे उसे निम्न लिखित औषधियों का मोटा २ चूण्ड= औंका चून ॥ सेर, घोऽ- शहरऽ- मिठा कर रोटी बना कर और अग्नि पर सेक कर खिजावे और थोड़ा २ सेंधा नमक भी गौ को चटाता रहे ॥

असगंध, सिताबर, मूसली सुफेद, समुद्र सोय, नाजमखाना, मुलेहठी, खिटी के बीज, समान भाग लेकर कूटकर चूण्ड करे इस रोटी को पांच सात दिन खिलाने के पश्चात्-पहले उस गाय के दुग्ध का घोनिकाल कर रकें। एक तोला घृत, शहद माशेई, पीपल दाने घुटे हुये चार रत्ती मिजाकर चाटे और ऊपर से उसी गाय का धारोप्य दुग्ध पाव भर से लेकर आधसेर तक पीवै-

गौ के दुग्ध को दुहते समय दोहनी से एक सुफेद घस का हन्ना घांध दे और उस छुम्ने पर मिथी अनुमान की पिसी हुई रखने पश्चात् दुग्ध को उसके ऊपर दुहे और उसे तत्काल ही हृष तक फेग शान्त न होने पावे पीले।—

मक्खन | ज्वर रोगी को मक्खन खाना भी बड़ा उपयोगी है ।

जिन को रुसवा दाह शुष्क कास, या धातु नाश हों उन्हें रिझोप्लादि चूर्ण भाशे दों मक्खन तोले एक या दो शब्द भाशे ६ मिलाकर खाना चाहिये । पाजारु, या कुछ दिन रक्खा हुआ मक्खन काम नहीं देता- गौ या बकरीके पवित्र दुग्ध का नित्य प्रति ताज़ा मक्खन मिलाकर खाना चाहिये ॥

घृत | घृत के नाम से यजुन से रोगी और वैद्य बड़े डरते हैं ।

पैशों में सूखी रोटी खिलाना ही पथ्यापथ्य का निचोड़ समझा जाता है । परन्तु यह प्रणाली शास्त्रीय सिद्धान्त से विपरीत है । पुराने ज्वर और इस ज्वर में जिस में ज्वर से धातु निरन्तर सूखती जाती हो घृत देना चरकादि श्रुति बड़ा लाभदायक घतजाते हैं । जिस प्रकार जलते हुए मकान को मनुष्य जल से बुका देते हैं वैसे ही ज्वर से सूखते हुए प्राणियों को वैद्य घृत से बुकाता है ऐसा चरकमें लिखा है । ज्वररोग पर पञ्चाण्डव्यालीस प्रकार के घृत बनाने के प्रयोग शास्त्रों में पाये जाते हैं । जिन में से कुछ भागे चिकित्सा प्रकरण में लिखेंगे) हमने इनका ज्वररोगियों पर अनक अर प्रयोग किया है और लाभ भी देखा है । पैशों का निर्मय होकर घृत को छिद्र कर उपयोग करना चाहिये ज्वररोग में धातुओं का ज्वर होने से निर्यजता विशेष होती है और दुग्ध घृतादि बल बढ़ाने वाले प्रधान पदार्थ हैं ।

फल | इस रोग में फलों का खाना भी बहुत अच्छा है । वि-

लायती अनार, अंगूर, सुनह्ला, किशमिश, फाजसे, कंला, छुहारे, आममीठा, इन फलों को थोड़े २ खाना चाहिये, अनार के रस के साथ पकाये हुए अन्न भी दाहनागक तृप्तिकारक और बल देने वाले होते हैं । भोजन काल से अग्य समय

में भूख लगने पर फलों को खाये । एक हकीम मुगमकों का अधिक खाना इस रोग में बड़ा हित घतजाते हैं । दधि के जिये सूखे कार्बोसिल का चूर्ण मिथी और नमक मिला कर खाते रहना अच्छा है ।

अन्न गैहू, निस्तुप जौ, मूंग, पुगाने खाड़ी चावल, इस रोग में हितकारी माने जाते हैं गोधूमसत्व, यवसत्व, मूंग, या जौकाचूष, गैहू का दलिया, बना कर खाना चाहिये । इन पदार्थों में यदि खटाई की आवश्यकता हो तो आमले या संतृअनार की खटाई डाले । रूत अन्न, उडद, आदि इस में वर्जिते हैं । पदार्थों में तीक्ष्ण मसाला नहीं डालना । ह्रींग, लाल मिर्च, लहसन आदि हानि कारक हैं ।

(१) गोधूमसत्व अथवा यवसत्व बनाने की विधि। पहले गैहू या पुराने जौ को कूट कर और भिगो कर सत्व निकाले पीछे उन्हें बकरी के घी में भून लें । भूनने में एक मिनिट भी नहीं लगती, कलक्रीक तेज एक हुए घी में सत छोड़ते ही भुनजाते हैं) तथा अनार और आमले का जल पहले से निकाल तयार कर रख्ये। फिर एक घसन में थोड़ा घी डाल जीरे का होंक लगा अनार का और आमले का रस तथा यवादि क सत्ता को छोड़ दे । रस में संधानमक, इलायची, पीपर, और थोड़ी सी सोंठ को कूट कर डाल दे । जब एक डफान आतावे तब इस चूप को उमार सय पीहित रोगी को पिलाये । अथवा भुने हुए सत्व को मिथी के जल में थोड़ा एक डफान देते, इस में सिनोपलादि चरनी और आमले का चूर्ण भी थोड़ा डाल दे, इस चूप में घनिष्ठता खाना ठीक नहीं, चूप के पाकी का प्रमाण अच्छी तरह कर लेना योग्य है ।

(२) जौ का चूप-इस चूप में चबोंको पका कर दूध निकाला जाता है, परन्तु इसका बनाना अति कठिन है अतएव इस की प्रक्रिया लिखी जाती है। पुराने ढिले हुए चबों को सोजख गुने पानी में पकाये तथा दूसरे एक घर्तन में गरम पानी और भी रखा रहने दें, जब चौथाई पानी रह जाये तब उसे फेंक देवे, और तब में इस दूसरे घर्तन का गरम पानी उतना ही डाल दें और फिर पकाये, इस प्रकार यह दूसरे या तीसरे बार में अवश्य गल जायेंगे तब उस अग्निम पानी को सीजे हुए जो सहित उतार लेवे और फिर एक गाढ़े बपड़े में ड्राने और सुकेद और गाढ़े रस्य को निकालले। तदनन्तर इस रस्य को घृत, जीरा तेजशत का छोक देकर छोक और इस में सेंधानमक, आमला, पीपर, सोंठ डाल एक उफान आने पर उतार लेवे और रोगी को सेवन कराये। आमले की जगह आमले का रस भी डाला जाता है। इस चूप को मोटा बनाओ तो मोटा भी सं० १ की विधि में बना सकते हो। पानी बार २ फेंकने का अभिप्राय यह है कि जौ बहुत देर में गलते हैं एक बार के पानी में नहीं गलेंगे जौ को मुनाकर चूप बनाना उत्तम नहीं है।

शाक, लौकी, तोरई, कभुआ, कमल की जड़, कंला, कटहर, खनेड़े, इन के शाक बना कर रोगी को खिलाने चाहिये। तरबूज, खरसों, करेला, मैथी, ककड़ी, सेम, के शाक हानिकारक है। गरम और तेज मसाले शाकों में न डाले जायें।

आहार विधि- ज्ञय रोगी को थोड़ा २ खाना बार २ खाना चाहिये। ऊपरी उपचारक, लमभा युक्ताकर रोगी के पेट में थोड़ा बहुत आहार अवश्य पहुंचाता रहे। जिस चीज़ के पाने से लाभ पहुंचे उसे खाता रहे अन्यथा तत्काज छोड़ दे।

॥ विहार ॥

ज्ञयरोगी को सदैव पवित्र, चिन्ता रहित, और शुश मिश्राज रहना चाहिये । ज्ञयरोगी को यह जतलाना कि तुम्हारा जीवन सकट मय है पड़ा हानि कारक है । शरीर को जितना आराम दिया जा सके ऐसे गीतवाद्य सुनना, जो बहलाने के लिये हृष्टमित्रों से हास्य करना, शब्दन लगाना, मन्द २ वायु का सेवन आदि रोगी का स्वास्थ्य बढ़ाते हैं । जिस काम या परिश्रम से शरीर म थकान मालूम दे ठके जभी न करे । ऐसा खेल जिस में आंग या गरमी बढ़े बड़ापि न खेले । यदि रोगी शक्तिष्ठ हो तो शुद्ध वायु के सेवन क लिये किन्हीं बगीचे में टहलकर फूलों फं सृष्टता रहे । ज्ञय रोगी क उपचारक ठमे ज्ञान्ति देते रहें । यद्यपि ज्ञयी वाजे रोगियों का स्वभाव चौपट और क्रोधाहु हो जाता है परन्तु उन्हें धीरज तथा शान्ति देते रहना योग्य है ।

स्नान | चार छः दिन पीछे रोगी को गुन गुने या ताड़ी पानी से न्हिजाया जाये । मैज मिट्टी एक तौलिया से साफ करले । स्नान प्रातः काज करना चाहिये । इससे जुकाम पैदा नहीं होता ।

इष्ट मित्र, | ज्ञय रोगी से प्रेम रखने वाले, रोगी को आश्वासन देते रहें । और रोगी को घटुत सुनाने की कोशिश न करें । ऐसा करने से रोगी का दिमाग कम और हो जाता है ।

किसी विचारणीय विषय पर बहस करना भी अच्छा नहीं है । जहाँ तक हो सक रोगी के पास मनुष्य कम जाया कर ।

पढ़ना लिखना | छय रोगी को ऐसी पुस्तकें जिन में विमारा को खोर लगाना पड़े, और ऐस

उपन्यास जिन से मन में ग्लानि या कुमाय बरपय हों पढ़ने क लिये न दिये जावें । हां जिन पुस्तकों क पढ़ने से चित्त में शान्ति प्रसन्नता और हर्ष पैदा हो इन्हें वे आदर्श पढ़ सकते हैं, जय रोगी को पढ़ने चाहियें । रामायण महाभारतादि पुस्तकें पढ़ने के लिये अच्छी हैं । विचारपूर्ण लेख लिखने से भी इन्हें रोचना चाहिये । अपने इष्ट मित्रों को पत्रादि लिखने का समय दिया जावे ।

व्यायाम | थोड़ी-२ ऐसी व्यायाम जिससे शरीर में शक्ति न मायूम पड़े छय रोगियों को करते रहना चाहिये । यहा से अधिक कसरत या परिश्रम भी रागियों क लिये अच्छा नहीं है । क्यों-क्यों छय रोगी स्वास्थ्य लाभ करता जाव

कुछ-२ व्यायाम भी बढ़ाया जावे । जब तक अधिक आजावे तब कुछ परिश्रम करने वाली कसरत भी दानि नहीं देती किन्तु उत से नींद आजाती है । आहार क पचाने में व्यायाम बड़ी सहायता देती है । और जय वाकों का आहार पचना एक आवश्यकतीय बात है । इस से स्वास्थ्य बढ़ने क साथ इसे भी बढ़ावे ॥

दिमायतियों के जोर से कितनी ही तृती बोल जायें परन्तु हमी
 वे प्राचीन ऋषियों की चिकित्साप्रणाली में बग़ावरी करने लायक
 नहीं हुए । हमारे शास्त्रों में सय रोग का कारण कीटाणुओं का
 भी माना है परन्तु जैसे डाक्टर लोग इस के पीछे पड़े हैं जैसे
 उन्होंने ने इन का वर्णन और परवाह नहीं की क्योंकि इन की
 चिकित्सा प्रणाली स्थिरता रखती थी । वे जानते थे कि बिना
 उपयुक्त भूमि मिले कीटाणु उत्पन्न नहीं हो सकते, और उत्पन्न
 हो भी जायें तौ रोग पैदा नहीं कर सकते इसलिये जो कारण
 शरीर को बिभाड़ने वाले या कीटों के लिये उपरान भूमि थे उनको
 ओर ही लक्ष्य रहा और इस ही से सय रोग में उन्हो ने कीट
 नाशक प्रयोगों को नहीं लिखा । यदि उत्तम स्वास्थ्य गृहों में
 ध्यायुर्देय प्रणाली से प्राकृतिक या धातु परिष्कृत चिकित्सा की
 जावे तौ वास्तविक लाभ पहुँचे । उत्तम चिकित्सा न होने क
 कारण आज कल स्वास्थ्य गृहों में रह कर अधिक धनव्यय
 करके भी बहुत से रोगी स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकते । बहुत
 से अच्छे डाक्टर इसकीट नाशनी चिकित्सा के पक्ष में नहीं हैं ।

कीटाणुओं का नाश



डाक्टर लोग स्यरोग का मुख्य कारण कीटाणुओं को मानते हैं। और उन क नाश करने को ही चिकित्सा का प्रधान सिद्धान्त समझते हैं। इस के लिये वे प्रायः बिपैजी औषधियाँ देते हैं, परन्तु इस चिकित्सा से स्थिर लाभ नहीं हो सकता। मूल मिति भी और उत्पन्न करके ऊपरी चिकित्सा करना कभी स्थिर लाभ नहीं देगा। जैसे किसी कमरे में दूँडा फरकट भरा पड़ा है और कमरे में अपनेक कीट पैदा होगये हैं जिन से कि स्वास्थ्य बिगड़ता है ऐसी अवस्था में उन कीटों को नाश करने के लिये विषता छिड़काव या धुँआ आदि करना बख्तम या टिकाऊ उपाय नहीं है क्योंकि कीटों को उत्पन्न करने वाला फूँडा फरकट जोंकि कीटों को पुनः उत्पन्न कर देगा अभी दूर नहीं किया गया, शरीर में कीट गुँधों को नाश करने के लिये जिन कारणों से कीट उत्पन्न होने हैं उन्हें दूर करना ही सर्वोत्तम उपाय है। बिपैजी औषधियों से कीटों का बिल नाश तो होता नहीं परन्तु रसादि धातु और भी बिगड़ जाते हैं। आज कल प्रायः इस ही प्रकार की चिकित्सा से डाक्टर लोग काम ले रहे हैं परन्तु ऊपरी स्तयन अच्छे होने पर भी कभी वे इस प्रणाली से अच्छा लाभ नहीं दिव्वा सत। यदि बख्तम आहार विहार की योजना कर रोगों बिना औषधि क ही रपखा जावे तो भी हम इसे इस बिपैली चिकित्सा से अच्छा समझते हैं। हमने बहुत से घनाढ्य रोगी लये देखे हैं जो कीटनाशनी बिचकारी आदि लगवाने पर कुछ दिन अच्छे होखे हैं, परन्तु पीछे वही रोग बफिस। डाक्टर लोग ग्राह किशने ही श्रेणी मारें और पश्चिमीय चिकित्सा की

द्विमासियों के ज़ोर में कितनी ही मूखी डॉक्टर अब परमशु आयी
 वे प्राचीन ऋषियों की चिकित्साप्रणाली से घराबरी करने लायक
 नहीं हुए । हमारे शास्त्रों में सय रोग का कारण कीटाणुओं की
 भी माना है परमशु जैसे घाफटर लोग इस के पीछे पड़े हैं तैम
 उन्होंने ने इन का घर्षण और परचाह नहीं की क्योंकि इन की
 चिकित्सा प्रणाली स्थिरता रखती थी । वे जानने थे कि बिना
 उपयुक्त भूमि मिले कीटाणु उत्पन्न नहीं हो सकते, और उत्पन्न
 हो भी जायें तौ रोग पैदा नहीं कर सकते इसलिये उो कारण
 शरीर को विषादने वाले या कीटों के लिये सर्वत्र भूमि से उनकी
 ओर ही लक्ष्य रहा और इस ही से सय रोग में उन्हो ने कीट
 नाशक प्रयोगों को नहीं लिखा । यदि उत्तम स्वास्थ्य मृदों में
 आधुनिक प्रणाली से प्राकृतिक या धातु यस्त्रिनी चिकित्सा की
 जावे तौ घास्तपिक लाभ वहुत्से । उत्तम चिकित्सा न होने क
 कारण आज कल स्वास्थ्य मृदों में रह कर अल्पक भनश्यय
 करन भी बहुत से रोगी स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकते । बहुत
 से अच्छे र हाफटर इसकीट नाशनी चिकित्सा के दक्ष में नहीं हैं ।

आयुर्वेदीय मूल से

चिकित्सा क्रम

जिन कारणों से जो रोग उत्पन्न हो उन कारणों को दूर करना ही लक्ष्य से इस रोगी को चिकित्सा है। पहले लोगों में यद्यपि क कारणों का विस्तार पर्यन्त किया है अतः उन्हें दूर करना ही रोग की चिकित्सा समझी पहली सीढ़ी है। अथवा चाण्य से इस रोग के चार कारण साहज सधारणादि बतलाये हैं जिनका कि पहले उल्लेख हो गया है। इन कारणों को दूर करने के लिये चिकित्सक को हृदय यत्नसाग रहना चाहिये। रोगी, साहजिक कर्म, और हेमरोइडमा त्याग दे यथा समय दित भाजन करे, और धानुषों की बुद्धि कर प्रयोगों का सेवन करे। देखक शास्त्र में वेद्य के जिय ज्ञाता हो है कि यद्यपि पुष्ट्य की मूल और यज्ञ की रक्षा करता रहे। जो वैद्य यज्ञ का सेवन, या धातुओं की रक्षा न करे रोगी का निर्यत्न बनाता है वह चिकित्सक नहीं कहा सकता। पर्यन्त।

मत्तायत्तं वलं पुँसां शुक्लायत्तं तु जीवनम् ।
तस्माद्यत्नेन संरक्षेत् यच्चिमणो मल्ल रेतसी ॥

मनुष्यों का यज्ञ मल्ल क, और जीवन हीम्यं के प्राचीन है। इस से यद्यपि पहले रोगी को इन दोनों की रक्षा यत्न से करनी चाहिये।

वैद्यों की चाहिये कि उपद्रवों की चिकित्सा करते हुए भी इन दोनों को सावधानी से देखता रहे कि कहीं रागी तिर्य प्रतिदुर्बल तो नहीं होता, और मक्ष अगद तो नहीं है । बल की जांच क लिये रोगी का प्रति सप्ताह बजन कराता रहे और उसकी मानसिक शक्ति की जांच करता रहे । जो दैन दिन दिग्घरे उट पटांग दया देकर रागी को सुसजाव करा देते हैं या कामठार बनाते हैं ये रोगी को मृत्यु के मुख में डकखते हैं । तय रोगी की जीवनाश तब ही तक रहती है जब तक कि वह द्रोक्षता फिरता और कुछ खा लेता है । सदयाशाया तयरोगी बन्धे ह्ये प्रायः देखे नहीं जाते । पचकर्म जो आयुर्वेदोव चिकित्सा का मुख्य अंग है यस्मा धाले को तब ही कराया जा सकता है मन तक कि बद् तियाओ को सहलकने धाला और यत्निष्ठ हो ।

॥ लाक्षणिक चिकित्सा ॥

प्रतिष्वाय (जुकाम)

इस राग में अधिकांश रोगियों को जुकाम ज्यादा होता है इसलिये प्रतिष्वाय नाशक मुख्य २ अनुभव में आय प्रयोगों को लिखते हैं ।

प्रतिष्वाय होने ही रोगी ऐसी जगह छोड़े या घंटे जहाँ वर्षा का शीतल धायुन चल रहा हो शिर पर गरम कपड़ा बांध ले । शरीर पर भी धूप्य वस्त्र धारण करे प्रतिष्वाय रोकने के लिये कोई तीक्ष्ण घोर गरम वस्तु न खावे, पहले ऐसी साधारण औषधि खावे जिस से वह आसानी से रुक जावे ॥

(१) मिथी २) मीठा कालीमिर्च पन्द्रह दाने (२) अदरक २) लाल मिर्चा १) ता० (३) मिथी १) ता मुजेदती ६ मा० कालीमिर्च १० दाने (४) गैहूं की मूली २) तो० मिथी १) ता० कालीमिर्च १० दाने (५) गुलबन्स ३ मा० दन्नाय ४ दाने मुनदा ७ दाने मुजेदती २ भागो रतमी के बीज २ भाग । इन में से किसी प्रयोग की पाव भर पानी में छोटा घे जप आधा रह जावे तब ह्यान कर पीये । खांसने से कफ न निकलने पर न० २ कण्ठ में सरास होगे पर न० ४ साथ में सुग्गी खांसी धाने पर न० ३-४ - का प्रयोग व म में जावे यदि मरान में कफ भरा हो और वोल करी हो तो इस दवा की दुकाम को सूखे-वर्ग निम्बन, उस्ताहदक गुग्गुलु, शलायची २ दिनाके से सब दवायक लेकर कफ न निकलने (२) कस्तुरी, सैहजने के बीज,

वाइपिंग, काली शिरच, इनको धारीक पीस कर बहुत थोड़े मात्रा सुँवे (३) फाक के पत्तों का स्वरस निकाल कर दो तीन घूँटें नालिका में डाले । शिर दर्ब होना हो तो (१) चूने को बहुत महीन पीस कर गाँड़ के कपड़े में छान ले पीछे डल में थोड़ा घी मिलाकर खूब घोंटे जब प्रलम्बता घन जाये तब इसका मस्तक पर लेप और मालिश करे (२) केशर १ मा० कपूर २ मा० वादाम की मिमी ३ मा० मिथी १ मा० इन को पानी में पीस दो हाँले घी डाल अग्नि पर गरम करे जब पानी जल जावे तब घी को छान कर उस को मस्तक पर मालिश करे और नालिका दाग ऊपर को चढ़ावे (३) नौसादर और चूना इन दोनों को मिलाकर शीशी में भरवे पीछे उस में पानी भर कर मुँह में डाल लगा दे हाँड़ खोज कर शीशी के मुँह को नालिका से लगा कर सूँवे (४) गाल कनेर के पुष्पों को घी में घोट कर मस्तक पर मले (५) रेनुका, तगर, पाषाण भेट मोथा, झौंठी इलायची अमर, देवदार, पाजछड़ अण्ड की मिमी, इन को पानी में पीस कर लेप करे ॥

यदि जुकाम से उबर आ जावे तो (१) मुनक्का ६ माशे मुलेहठी माशे ६ कटेहरी की जड़ माशे ६ (२) बाले की जड़ ६ माशे कटेहरी की जड़ मा० ६ गिलोइ माशे ६ (३) गिलोइ कुटकी, नीम की छाल पटोल पत्र, मोथा, लाल चन्दन, सोंठ, इन्द्र जौ तीन २ माशे इन में से किसी काय को पाय भर पानी में घोटायें जब हटांक भर रहै तब छान कर पितावे ॥

जिन मनुष्यों को जुकाम वाग २ हो या बना रहे वे आसुवें-दोष प्रसिद्धे प्रयोग जैसे, जातीकजाटि, लवगादि चूर्ण, चषमन माश्य, विष्णुवादि लेप, द्राक्षाक्षय दशमूलासन आदि किसी औषधि का सेवन परापर करता रहै ।

❀ खांसी ❀

एक गोल में खांसी व्यवस्था होने से और प्रायः सूखी खांसी आया करती है। ऐसी खांसी के लिये गरम औषधियां नहीं खानी चाहिये। क्योंकि गरम दवाइयों से ग्लूट आतिवृद्धता है। तर गरम दवाइयां ही अधिक लाभ देती हैं। स्निग्ध पदार्थ ऐसी खांसी में लाभ देना करके है। थोड़े से छोट-छोटे प्रयोग नोच लिखते हैं दिन से खांसी कम हो जावे और आलामी से बच मिचके ॥

वलादिकाथ | खिरौरी, मुनफका, कटेहरी की सड़, अरुमे की अड़ इस चारों औषधियों को छः छः मासे लेकर कृचलकर पाषभर पानी में लौटावे जय हटांक भर रहे तब छान कर शहद मासे ६ डालकर पीये।

एलादिवटी | इलायची छोटी, तेजपात, दाजचीनी, मुनफका पीपल छोटी, ६: ६: मासे मिथी, मुलेहठी, खजूरा, किममिण एक २ तोले इन को शहद डालकर भरबेर घराघर गोली बनाले और दिन रात में दस पांच घार मुह में डाल कर चूसता रहे।

मिर्चादिवटी | गोंद पचूज, मुलेहठी का सप्त, मिर्चकानी, मिथी इन को कपर छन कर पानी डालकर गोली बनावे और मुह में डाला करे।

यवामादिवटी | जगामे की जड़, पीपर छोटी के बीज, मु-
नक्का, बाकड़ासींगी इन को पीस कर
शहद के साथ गोजी बनावे और मुँह में डाले ।

खैरसारादि | पपरिया कट्या ५) तोला, छतमो के बीज
२) तोला, गोँद बधूर १) तोला, कतीरा १) तोला,
बहेङ्ग का बदन १) तोला, मुलेहठी २) तोला, कपूर माशे ६,
इन को धारीक पील बिट्टीदाने क लुआय में घोट कर गोजी
बनावे यह आंखी के लिये बड़ा अच्छा प्रयोग है ।

शुष्क कामारि चूर्ण | कतीरा गोँद तोला २) गोँद बधूर
१) तोला मुलेहठी १) तोला
अंशलाचन तोला १) लौकी की मिंगी १) तोला इन को पीस
कर दो दो माशे शहद में मिलाकर चाखें-

कफार्द्रावलेह- | हंसराज तो० १) मुलेहठी तो० १) छतमो
के बीज माशे ८ उद्राय तोले १) जूफा
माशे ६ इन दवाओं को कुचल कर आध सेर पानी में भौंटावे
जब आध पाव रहे तब आध पाव मिथी डाल कर चाशनी ले
और शर्बत बना कर चाटता रहे ।

इसी प्रकार पांसावलेह, पांसाकूप्पावलेह, कूप्पावलेह-
पलेह, द्राक्षासव, बधूलारिष्ट, गृगांक पोटलीरस, सितंपलादि
चूर्ण मक्खन के साथ, जोरुनाथरस, धुंगाराघरटी, आदि प्रसिद्ध
ओषधियाँ भी बड़ी काम दायक हैं ।

॥ रक्तागम ॥

लघु, रक्तपित्त, उरः क्षतादि रोगों में वाम के साथ रक्त आता है। उस से रोगी निर्वृत्त हो जाता है। रक्त को एक साथ बन्द करने के लिये कोई उपाय न करे। सहसा रक्त बन्द करने से भी हानि होती है ॥

- (१) बबूल की कोंपल, धनार के पत्ते, आंजले, धनियाँ, इन तीनों २ माशे लेकर रात को ५- छटाँक भर पानी में भिगोदे सबेरे मल छान कर मिथी मा० ६ मिला कर पीवे।
- (२) लाल पीपल की तुंग्य में औटा कर या पीस कर शहब में मिलाकर खाटे-
- (३) कच्चे गुजर का खरख तोले १) शहद माशे ३ मिलाकर खाटे।
- (४) सितोपलादि चटनी माशे २ नागकेशर माशे २ बीनों का मिताकर मङ्गलन या जौनी, मिलाकर खावे।
- ५) नेत्रधाता, कमला, धनिया, चन्दन, मुलेहठी, गिलाइ, खर, अहूता, इनका छाय बनाकर पीवे।
- ६) इपकी पगोली, कमल की जड़, कमल केशर, मोचरल, मुनेहठी, पद्माम्ब, बड़की कोंपल, मुनका, कजूरा इनका काड़ा बना कर पीवे।

- (७) गुजहठी, और दुग्ध घौटा कर मिथी और शहद मिजा कर पीवे ।
- (८) मैत्रवाजा, सजुरा, मुनवा, मुलेठी, फालसा, इनधौपधों के काढ़े में मिथी मिजाय कर पीवे ।
- ९) पोस्त के दाने, बादाम की मिर्गी, इन को मिगोकर पीस कर मिथी मिजाकर पीवे ।
- १०) नासिका से रुधिर गिरता हो तो दूध, धनार की बजो, कपूर इनका पीस केय करे या नासिका से सूवे (२) शिर पर फिटकिरी के पानी से भीगे हुए कपड़े को रखवे ।

इन के अतिरिक्त, वशीरादि चूर्ण, उशीरास्य, खंडकाश्व-
तेह, दुर्वादि घृत, दूधमाडोसध, जोहभस्म, आदि प्रयोग भी
इत प्रच्छे है ।

यक्ष्मा के विशेष २ प्रयोगों का वर्णन

धनहीन यक्ष्मियों के लिये कुछ प्रयोग
❀ प्रयोग पंचदशी ❀

(१) लघु लोकनाथरस (२) अमृतेश्वररस ३) क्षय के-
सरी (४) यक्ष्मांतक लोह (५) बृहन् वासाबलेह (६) जीवन्त्या
दि घृत (७) द्राक्षादिष्ट (८) यन्त्रूलारिष्ट (९) पिण्ड्यासव (१०)
मितापलादि चूर्ण (११) जातिफल्लादि चूर्ण (१२) तालीसादि
घटिका (१३) यथानी खांडव (१४) चन्दनादि तैल (१५) अशो-
कारिष्ट ।

❀ उपयोग ❀

- | | |
|--------------------|---|
| (१) लघुलोकनाथरस | } ये चारों प्रयोग विण्णली और
काली मिरचों के चूर्ण क
साथ मधु वा मक्खन अथ-
वा जीवन्त्यादि घृत में मिला
कर घलानुसार अहोरात्र में |
| (२) अमृतेश्वर | |
| (३) क्षय केशरी | |
| (४) यक्ष्मांतक लोह | |

तोन चार बार वा न्यूनाधिक जैसा घैय योग्य समझे सेवन
कराना उत्तम है, ये प्रयोग ज्वर, काम, प्र्यास अग्निर्माद्यादि
यक्ष्मा के सम्पूर्ण रोगों में उपयोग कराने योग्य है, इनसे यक्ष्मा
के सब रोगों को जाम होना है ।

(५) वृ० वासावलेह—यह अवलेह अहोरात्र में तीन, चार वा अधिकवार जैसा वैद्य योग्य समझे सेवन कराये, यह यक्ष्मा के क्षतज क्षयजादि सम्पूर्ण कासों के लिये आयुर्वेद में एक अमोघ औषधि है। इस के सिवाय वमन, रक्तपित्त, प्रणतय, उरः क्षत, दाहश्वास हृदयशूल, पाशवंशूल, अरुचि, ज्वर इन सब रोगों में यह, अवलेह, अघश्य प्रयोग में लाना चाहिये, यक्ष्मा के लिये यह अवलेह जीवन स्वरूप है।

(६) जीवन्त्यादि घृत—यह घृत यक्ष्मा के पक्षादशरूपों में सेवन करना योग्य है। इसे भी अहोरात्र में तीन चार घार देना चाहिये। यह घृत यक्ष्मा के ज्वर और कास और पार्श्व शूलादि को शीघ्र दूर करता है। और बल को बढ़ाता है।

(७) द्राक्षादिष्टि—इसे उरःक्षत, दाहरोग, क्षयजादि सम्पूर्ण कास श्वास, कण्ठरोगों में, सेवन कराना योग्य है फुफ्फुसादि दो शुद्ध करने के लिये तथा उनका मज्जान बनाने के लिये यह दूसरा अमृत है। इसका प्रयोग अहोरात्र में तीन चारघार कराना योग्य है, यक्ष्मा कुछ पथ्य ले चुके तो उस के अनन्तर यह अवश्य पिलाना चाहिये। यह पाचक और रोचक भी है।

(८) वञ्जुलादिष्टि—क्षयज शुष्क कास को धार्द्र करता है, फुफ्फुसादि के चिपटे हुए कफ को बाहिर निकालता है। तथा अतिसार को दूर करता है। प्रमेह को नष्ट करता है। बुष्ट को नष्ट करता है। त्रियों के प्रदर में लाभकारी है। घातु क्षय को धामकारी है। अतपत्र क्षय, अतिसार, प्रमेह, शुष्क कास श्वास में इस का प्रयोग करना योग्य है। यह भी दशानुसार दो तीन चार घार सेवन कराना योग्य है।

(९) पिप्पल्यासव—इसका उपयोग क्षय की ऐसी घटस्था में करना च हिये जस करु त्रिदोषतया निकल रहा हो कफ निकलने से रोगी दुर्बल होगया हो, यह उदर रोग, ग्रहणी, पांडू, अर्श में भी यथा समयदिया जाता है । और यदि लाघारण कफ निकलने में १ पार देने से कोई हानि न दीये तो प्रयोग करना योग्य है । इसको परीक्षा कर देखते, यह अग्नि की शक्ति को बहुत शीघ्र तीव्र करता है । यदि यह सात्म्य हो जाये तो रोगी को भोजन पर शीघ्र रुचि आती है ।

(१०) सितोपलादि चूर्ण—यह शश्ठ अथवा शहड और घृत में मिलाकर तीस चार चार चाटना चादिये यदना के कास श्वास को लाभ पहुंचाता है । रुचि का शीघ्र अन्न पर लाता है । दाह तथा को दूर करता है, अग्नि को बल देता है । ज्वर को शरीर से निकालना है । अतएव इन रोगों में इस का प्रयोग करना योग्य है ।

(११) जातीकलादि—यह चूर्ण अतिसार, संग्रहणी अरुचि, प्रतिश्याय, अग्नि मांघ, कास, श्वासादि यदमाके रोगों में उच्छृष्ट औषध है । यदमा के दस्तों में यकती के दूध के साथ इसे देना ज मकारी है ।

(१२) तालीसादि चटिका—यह घटी मुख में प्रत्येक समय रूढ़ से मुख धैरस्य, कासादि नष्ट होते हैं ।

(१३) यवानी खारडव—मुख वैरस्य, हृद्दोग, प्लीहा, पार्श्वशूल, विवन्ध, घानाह, काल, श्वास मं देना परम उपयोगी है, भोजन रचि उत्पन्न करता है । और खाने में सुखादु भी है ।

(१४) चन्दनादि तैल—शरीर पर मर्दन किया हुआ पुराने ज्वर, पुराने कास को लाभ पहुंचाता है । पल और घर्ष सौन्दर्य को बढ़ाता है । अक्षमा में इस तैल का मर्दन कराना योग्य है । अक्षमा के लिये यह तैल परम औषधि है ।

(१५) अशोकारिष्ट—रिषों की चिकित्सा में उपयोगी होता है, यदि किसी को प्रदर रोग हो तो यह अरिष्ट प्वतंत्र या ब्राह्मरिष्टादि में मिजादर विजाना योग्य है ।

(१०८)

सामर्थ्यवन्तों के प्रयोगों का
वर्णन

प्रयोग पंचविंशतिः

(३) राज मृगांक—चय रोग की सुप्रसिद्ध महौषध है। चय सम्बन्धी सब विकारों में दी जाती है, अनुपान- पीपल और, कालीमिर्चों के चूर्ण के साथ। विषम भाग प्राप्त मधु और घृत में मिला देना योग्य है— अथवा पीपर और कालीमिर्चों की संख्या दोर बलानुसार निर्णीत करके, प्रातः शायं दो समय तो देना ही चाहिये। रोगी सह सके तो अधिकतया ४ बार तक दी जा सकती है। इसका प्रयोग धल्प मात्रा में करे। प्रारम्भिक मात्रा १ रत्नी होना योग्य है। पीछे रोगों के बलानुसार इस की मात्रा बढ़ा देना योग्य है ॥

(४) महा मृगांक— (५) हेम गर्भ पोडली (६) रत्न गर्भ पोडली (७) वृः काञ्चनाभ्र रस आदि भी चय रोग की सुप्रसिद्ध महौषध हैं। इन का उपयोग राजमृगांकवत् करना चाहिये। इन की मात्रा ४ चा० से प्रारंभ करना अच्छा है। पर हेम गर्भ पोडली की विधि इस के प्रयोग में देयो ॥

(८) वृ० वासावलेह —इस के उपयोग के विषय में लिख चुके हैं ॥

(९) ज्यवन प्राश— (१०) अमृत प्राशावलेहों का उपयोग वृ० वासावलेह के समान होता है। वृ० वामावलेह की अपेक्षा यह अवलेह कुछ शीघ्र फल दिखाते हैं, यह अवलेह मूत्र कृच्छ्र और प्रमेह को भी अत्यन्त जाम पटुं चाते हैं ॥

(११) जीवन्त्यादि घृत— इस के लेवन के विषय में लिख चुके हैं ॥

(१२) सुश्रुतोक्त एलादि घृत— यह घृत जीवन्त्यादि की अपेक्षा शीघ्र लाभ करता है। इस के सेवन में इतनी विशेषता है कि इसका सेवन पर के दूध अनशय पीव। यह दूध का अनुपान जीवन्त्यादि अन्य घृतों में भी दरना प्रशस्ततम है, यह स्त्रियों के प्रदर के लिये भी उत्तम है। पुरुषों के प्रमेह को भी लाभ करता है। यक्ष्मा के लिये एक प्रगन्यतम औषध है। सुश्रुताचार्य इसे केलत प्रतः काल देन को कहा है। मृर्गांशुदि रक्त इस घृत के अनुपान से सेवन भिये जाय तो शीघ्र ही लाभकारी होते हैं ॥

(१३) द्राक्षादि घृत— उरःघात, कास, श्वास, ज्वर, दाह, पांडु, मदर और रक्त पित्त रोगों में इसे सेवन करना योग्य है, यह घृत भी जीवन्त्यादि घृतोंकी भांति सेवन किया जा सकता है। घृतों में मुक्तादि चूर्ण और सुर्यमसम डाल देना भी शब्दा है ॥

(१४) द्राक्षारिष्ट (१५) मञ्जूलारिष्ट (१६) पिप्पल्यासद— इन के सेवन की विधि लिखी जा चुकी है।

(१७) दशमूलारिष्ट— यह भी धातु पुष्टि करता है। स्त्रियों को भी सेवन कराना योग्य है, सयी के रर को शीघ्र निकालता है।

[१८] एलादिगुटिका [१९] तालीसादिगुटिका— वं नों को मुख में रखने से कास मुख पैरस्य, ज्वर, अरुचि आदि दूर हो जाते हैं।

[२०] सितोपलादि चूर्ण, [२१] जातीफलादि चूर्ण, [२२] यवानी खाराडव [२३] चन्दनादि तैल— इन सब के भेदन की विधि लिखी जा चुकी है ॥

[२४] लान्नादि तैल---चन्दनादि के समान इस का भी उपयोग है ॥

[२५] अशोकारिष्ट— इस की भी विधि लिख चुके हैं ॥



त्रयोगावली

आटरूपादिकाथ—अड्डमा, सिग्म की छाल, अलसंगंध, सांठ का जड़, इनका काथ स्यरोग में उस अवस्था में लाभ देता है जब कि खांसी, शरीर में दर्द और किन्ही स्थान में सूजन हो ।

त्रयोदृशांग काथ—धनियां, पीपल, सांठ, टण्डुल, इनका काथ पाश्चंशुल, श्वास दुःखाम और ज्वरको दूर करता है श्रात और वक्र की अघिकता में देना चाहिये ।

दशमूलादिकाथ—दशमूल, खिरेटी, रायसन, पोइकरमूल, देवदार मोथा, इनका काथ पसवाड़ा, कन्धा, मस्तिष्क इन के शूल को और वरःपत खांसी श्वास को दूर करता है ।

वलादि काथ—खिरेटी, विदारीकंद, अम्मारी, सेवती के फूल, सितावर, सांठकीजड़ इन औषधियोंको दूधमें छोटाकर छानकर और शहतमिलाकर पीने से स्य शोषादि से दुर्बल रोगी का बल बढ़ता है तथा खांसी को नष्ट करता है ।

द्वितीयवलादिकाथ—खिरेटी, दोनों कटेरी की जड़, मुनफका, अड्डसे के पत्ता, इन का काथ में शहत छाल कर और मिथी डालकर पीने से स्य अन्य शुष्ककास दूर होता है ।

उपरोक कार्यों की औषधियां समान भाग लेनी चाहिये । और १ मात्रा दो तोजे की बनानी चाहिये । उमे पावभर पानी में छोटाघो जय दूदांक भर रहे जय छानना चाहिये । मिथी शहत जो प्रक्षेप में हैं उन्हें एक खुराक में चार २ मासे डालने चाहिये ।

मुक्तादि चूर्ण—मोती तोले १, धम्वर ३ माशे, सोने के बर्क ३ माशे, चांदी के बर्क ६ माशे, फस्तूरी १॥ माशे, बंसलोचन ६ माशे छोटी इलायची के बीज ३ माशे पीपर के दाने ३ माशे प्रथम मोतियों को गुलाब जल में खरलकर उस में स्वर्ण और चांदी के बर्क खरल करले, पश्चात् सूखने पर धन्य औषधियों को दूसरे जारल में घोटकर मिलावे और ३ रसी चूर्ण को १ तोले मफ्जन और ४ माशे शहत में मिला कर क्षय रोग की उस अवस्था में देवे जब कि ज्वर की मन्द उप्मा हो रोगी निर्वज हो और कफ की अधिक्ता हो ।

सितोपलादि चूर्ण—मिथी १६ माशे बंसलोचन ५ माशे पीपर छोटी ४ माशे, छोटी इलायची के दाने २ माशे दाजचीनी १ माशे, इन सब को छूट कर चूर्ण बना लेवे, इस में से २ माशे चूर्ण को एक तोले मफ्जन और ४ माशे शहत में मिला कर क्षय रोग की उस अवस्था में जब कि शुष्कपांसी, दाह, पाह दाह, ज्वर अपवा अरुचि, हो देवे ।

जातीफलादि चूर्ण—जायफल, पायविडंग, चीतेकी छाज तगर, तिज, ताळीसपत्र, चन्दन सफेद, सोंठ, लोंग, कालाजीरा, भीमतेनीरूपूर, हरद, धांमले, पीपलछोटी, बंसलोचन, दाजचीनी, तेजपात, इलायचीछोटी, नागकेशर, यह सब औषधियां तीन २ तोले ले और मांग २५ तोले ले और सब की बराबर मिथी मिला सब को कूट कपड़ छनकर चूर्ण बनाये । जब क्षयरोगी को दस्त होते हों या भूक न लगती हो अरुचि हो पांसी हो उस अवस्था में २ माशे चूर्ण को ६, ६ माशे शहत में मिलाकर चाटना चाहिये ।

यवानी खांडव—अजमोद धनार दाना, सोंठ, ततड़ीक, अमलबेंती, बेर खट्टे ये औषधियां चार २ माशे काली मिर्च ढाई माशे, पीपल छोटी १० माशे, दालचीनी, काला नोन, धनियों, जीरा सफेद, ये प्रत्येक दो दो माशे और मिथी ६४ माशे ले सब का चूर्ण करले । यह चूर्ण २ माशे जल क साथ, स्रय के साथ जप अर्धाच हो, दे ।

त्वंगादि चूर्ण—जोंग, कंकोज मिर्च, जस, सफेद चन्दन, तगर, कमलगट्टा, काला जीरा, छोटी इलायची काला अगार, नाग केशर, छोटी पीपल, सोंठ, दालहड़, नेत्र घाला, कपूर, जायफल, घंसलोचन. ये सब औषधियां बराबर २ लेवे और सब की आधी मिथी मिलावे । यह चूर्ण १॥ माशे से २ माशे तक शहत के साथ दे । यह चूर्ण दाह, अरुचि, ज्वर को दूर करता है । वीर्य्य घट्टक और जठराग्नि प्रदीपक है ।

द्राक्षादि चूर्ण—मुनफला, खीज, मिथी, मुलेहठी, कजूर, सारिवा, घंसलोचन, नेत्र घाला, आमले, मोथा, चन्दन सफेद, दालहड़, कंकोल, जायफल, दालचीनी, तेजपात इलायची छोटी, नाग केशर, पीपल छोटी, धनियों ये सब औषधियां समान भागले और सब की बराबर मिथी मिलावे । इस की मात्रा २ माशे से ६ माशे तक है, अनुपान जल व दुग्ध क साथ पित्त, पित्तदाह, मूर्च्छा, घमन, अरुचि, स्रय, ज्वर, रक्तपित्त, और रक्त विकार क लिये देना चाहिये ।

कर्पूरादि चूर्ण—कपूर, दालचीनी, कंकोल, जायफल, तेजपात यह समान भाग लेवे, जोंग १ जटासांसी २ काली मिर्च पीपल ४ सोंठ ४ भाग ले और सब औषधियों क बराबर मिथी मिला कपड़ छन पर चूर्ण घनावे इस की मात्रा १ माशे से

माशे तक अनुपान शहद व दूध के साथ । यह चूर्ण हृदय को हितकारी, क्षय, खांसी, न्यास और अंत रोग नाशक है ।

रास्नादि चूर्ण—रास्ना, कपूर, तालीसपत्र, मजीठ, शिजा जीत, त्रिकुटा, त्रिकता, मोथा, घाय बिरंग, चीतेकी छाल, ये औषधि समान भागले और जोहभस्य १४ भाग ले सब को कपड़कन कर चूर्ण करते । इस चूर्णकी एक माशेमात्रा शहत माशे ४ और घी माशे ६ में मिजा कर क्षय की इस अवस्था में दे जब कि शुष्क खांसी और रोगी बल हीन हो । पकूस, तिल्ली, बड़ गई हो पेटमें दर्द और अग्नि मन्द हो कफ के साथ रक्त जाता हो ।

उशीरदि चूर्ण—अस, तगर, सोंठ, फंकोल, चन्दन, दोंतों, लोंग, पीपरा मूल, पीपल छोटी, इलायची छोटी, नाग केशर, मोथा, अर्बुजा, कपूर, तशाखीर, तेजपात, काजा अगार, ये समान भाग लेवे तथा इन सब का अष्टमांग मिथी मिजाय चूर्ण करे । यह रक्त घांति (खून की घमन) और हृदय का संताप इन को नष्ट करता है । मात्रा २ माशे से ६ माशे तक अनुपान जल व दूध ॥

तालीसादि चूर्ण—तालीसपत्र १ काजी मिर्च २ सोंठ ३ पीपल छोटी ४ घंस लोचन ५ दाज चीनी अर्ध भाग, इलायची छोटी अर्ध भाग और मिथी ३२ भाग ले चूर्ण करे यह चूर्ण खांसी स्वात, अस्ति, हृदयरोग, शोथ, उवर कफ नाशक और अग्नि वर्धक है ॥

एलादि गुटिका—इलायची छोटी ६ माशे तेजगत ६ माशे दाजचीनी ६ माशे मुनक्का और पी छोटी दो दो तोले मिथी ४ तोले मुजेठी ४ तोले पजूर ४

किशमिरा ५ तोले इन को पीस कर गहन में गोली फरारे के परावर बनावे । इन गोलियों से उरःक्षत, शोष, स्वर, घृष्क खांसी, दृषा, अरचि, स्वरभंग ये सब नष्ट होते हैं ।

सूर्यप्रभा गुटिका—दारुहल्ली, मोंठ, काल मिर्च, पीपल छोटी, वायविडंग, चीतेकीछाल, यच, हल्ली, कंजा, गिलोइ, देवदार, अतीस, निसोध, कुट्टी, धनियों, अजमायन, जराधार, सुहागो, सैधानमरु, कालानमरु, कच-खोना, गजपीपल, चव्य, मिलाये, ताजीसपत्र, पीपलमूल, पोइकरमूल, चिरायना, भारंगी, पदमाच, जीरा सफेद, जायफज, कुड़ा की छाल, दंती, मोथा, ये औषधियां एक एक तोला ले और थिकता २० तोला शिलाजीत २० तोला मृगुत ३२ तोले सोहमरु २५ तोले स्वर्ण मात्तिकमरु ५ तोला मिथ्री २० तोला अंसलोचन, दालचीनी, तेजपात इजायची छोटी ये औषधियां चार चार तोले ले, और सब का चूर्ण बना घी, रात में पीस गोली फरारे के परावर बनावे । जित रोगी को सब के साथ दीर्घ विकार भी हो उर के लिये यह अतिजात दायक है और खांसी उरःक्षत शोष मंदाग्नि को दूर करती हैं ।

च्यवनप्राश्यावलेह—शालपर्णी, प्रष्टपर्णी, कटेरी दोनों की जड़, गोजरू की जड़, बैल की जड़ की छाल, अग्निमंथ, श्योनाक, खम्मारी, पाठा, खिरेटी, मुग्दपर्णी, मापपर्णी काकड़ासिंगी, भूमिधामला, मुनक्का, जीवन्ती, पोइकर-मूल, अगर, हरड, गिलोइ जीवरु, अृषमरु, अृद्धि, कचर, मोथा, सांठ की जड़, मेदा, इजायची छोटी, कमलगट्टा चन्दन-सफेद, विदारीशंद, बांसे की जड़, काकोली, काकनासा ये प्रत्येक चार चार तोला, आंबले ५०० नग, जल १ द्रोण (१६ सेर) शेषज एक आड़क घृत २० तोला, तैल सरसों का २० तोले,

मिथी २०० तोले, शहत २० तोले, घंसलोचन १६ तोला, पीपल-छोटी ८ तोला दाजचीनी, इलायची छोटी, नागकेशर, ये सब ४ तोला लेवे ॥ बनाने की विधि —

प्रथम शालपर्णी से फाकनासा तक औषधियों को जोड़कर धामले पानी के साथ एक गागर (मटका) में भर कर औंटाओ लव चौथाई श्रेय रहे तब धामले निकाला अलग रखे और दवा में से पानी (काथ) अलग निकाल ले । इन उवाळे हुये धामलों को मथ और गुडजी निकाल कपडा में छान ले, और घृत, तैल, दाज चीनी की कढ़ाई में धामले के गूदे को भुनले फिर काथ (जो धामले के साथ औषधियां औंटाई गई थी) में मिथी डाल चासनी करे जब चासनी होजाये तब घंसलोचन से नाग केशर तक औषधियों को कूट कपड़हन कर मिलादे तथा शहत और भूना धामले का गूदा डार अथलेह तैयार करे । यह अथलेह एक एक तोले दूध के साथ चय रोग की उस अवस्था में दे जब कि रोगी दुर्बल हो, बात पित्त की लासी हो, दाह हो, वीर्य विकार हो, कफ के साथ रक्त जाता हो, कंठ का स्वर क्षीण होगया हो, ।

अमृत प्राश्यावलेह—गाय दा दुग्ध, धामले, विशाखेन्द्र, इंध्र, और क्षीर घृत्तों का रस एक २ सेर घी, एक सेर, मुजेठी, इंस, सुनकका, दोगों चन्दन, मस, मिथी, कमलगट्टा, महुआ के फूल, पदमाख, जवासेदीजड़, चम्भारी, रोहिपतृण, ये सब औषधियां कढ़काय डेढ़ २ तोले ले, घृत पाक विधि से घो सिख करले, पीड़े इस घी में आध सेर शहत और मिथी ५ सेर तथा दाजचीनी, इलायची छोटी, तेजपात, नाग केशर दो दो तोले को चूर्ण कर मिलावे, इसे अमृतप्राश्यावलेह कहते हैं ।

एक तोले अवलेह दुग्ध के साथ पिलावे। इसके रक्त पित्त, क्षत क्षय, श्वास, खांसी, अरुचि, दिचकी, मूत्ररुच्छू और स्वर दूर होते हैं, और बलवर्धक है।

वृ० वासावलेह—शांसा ४०० तोले को एक द्रोण

(१६ सेर) पानी में पकावे चतुर्थांश शेष रहने पर उगार कर छानले। पुनः इस जल में ४०० तोले मिथी मिर्चाकर मन्द अग्नि से चासनी अवलेह को करले। और सोंठ, मिर्च बारी, पीपरछोटी, इजायची, दालचीनी, तेज गत, कायफज, मोथा, कूट, जीरे दंतों, निहोथ, पीपरा मूल, चव्य कुटकी, आमले, तालीसपत्र, घनियां, बसलोवन, ये सब औषधियां दो २ तोले ले चूर्ण कर मिलाले और शीतज होने पर ३२ तोला गहन मिर्चा कर अवलेह तैयार करे। इस अवलेह को रोगी का बलावज पिचार १ तोले से २ तोले तक गरम (गुनगुने) जल के साथ क्षय-रोगी को दे। यह अवलेह उहा अस्थि में अति लाभ देना है, जब कि कफ खांसी की अधिकता हो, दस्त साफ न होता हो, और अग्नि मन्द हो।

बलादिघृत—दिरडी, गोपक, बटेरी की जड़, पृष्ठ-

पर्णी, शालपर्णी, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, मोथा, आयमाण, अवासेकीजड़, बड़ी बटेरी, हरद, कचूर, मुनक्का, पोदकरमूल, मेदा आंवला ये सब औषधियां दस २ तोले लेकर ८॥ सेर पानी में धोटाशो जप ०= सेर रहे तब छान कर उसमें दूध गाब का २= सेर और घी १-सेर डाले और भूमि आंवला, कचूर मुनक्का, पोदकरमूल, मेदा, आमले साढ़े तीन तीन तोले ले कर बना घृत सिद्ध करे। इस घृत के सेवन से उबर, क्षय, कास शिर और पसराड़े की दर्द दूर होता है।

जीवंत्यादिघृत—जीकन्ती, मुजेठी, मुनक्का, इन्द्रजौ, कचूर, पोहकरमूल, कटेरी की जड़, गोखरू, खिरैटी, नीलोफर, भूमिभाँवला, प्रायमाण, जवासेकीजड़, पीपलछोटी ये सब औषधियाँ पाँच २ तोला ले चार सेर जल में औटावे जब १ सेर रहे तब छानकर पकरी का दूध २ सेर दही १ सेर घी एक सेर मिलाकर पकावे जब घृतमात्र शेष रहे तब छान कर रफ़्ते । यह घृत तब रोग के ११ उपद्रवों को दूर करता है तथा नस्य लेने से शिर रोग दूर करता है ।

कोलाद्य घृत—वेर की जास का रस १ सेर, घृत एक सेर, दूध आधसेर, और घायविडंग, दारुधल्ली, दाजचीनी, अजरांटे, खजूरा, फाजसे, मुनक्का, मुजेठी, पीपल छोटी, ये सब दो २ तोले ले कढ़क बनाकर मिला पचावे जब घृत मात्र शेष रहे तब छान कर रफ़्ते । इस में खाँसी कफ के साथ रक्त का घाना स्वरभेद, श्वास, ज्वर नष्ट होते हैं ।

गौक्षुरादिघृत—गोखरू, जवालो, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, मुद्गपर्णी माषपर्णी, खिरैटी, पित्तपापड़ा, एक एक छटाकपानी ५ सेर में औटाओ । जब आधसेर पानी शेष रहे तब छान कर कचूर, पोहकरमूल, पीपल, प्रायमाण, भूमिभाँवला, चिरायता, कुटकी, सारिषा, ये सब एक २ तोला ले । इन औषधियों का कढ़क पचावे । और घृत एक सेर दूध २ सेर डाल कर पचावे जब घृत मात्र शेष रहे तब छान कर रफ़्ते । इस घृत से ज्वर, दाह, श्वास, पक्षी और मसुक का शूल आदि सब के उपद्रव दूर होते हैं ।

नोट—कोलाद्यघृत में वेर की जास का रस लिखा है उस के बनाने की विधि यह है कि एक सेर जास को चार सेर पानी में औटाओ जब १ सेर रहे तब छान लो । और औटाते समय सन्जी, सुहागा लोध दो २ तोले डालना चाहिये ।

एलादिघृत—शलावची छोटी, अजमोद, आमले, हरड़, बहेड़ा, खैर, नीम, बिजे शाल, (खैर से शाल तक चारों का सार लेना चाहिये सार न मिले तो ह्याज लेना) वायविङ्ग, भिजाये, चित्रक, त्रिहुटा, मोथा, गोपीचन्दन, ये सब आठ आठ पल ले सांजह गुने जल में पचावे । जब सोजवां भाग शेष रहे तब ह्यान कर एक सेर घी डाल कर पचावे जब घी मात्र शेष रहे तब ह्यान कर २ सेर शहत, छेः छटांक वंसलोचन का चूर्ण, और एक सेर चौदह छटांक मिथी, मिलाकर रई से अच्छी प्रकार मथ कर एक रत्न करले । यह घी दो तौले दूध के साथ खिजावे इसके सेवन करने से यक्ष्मा रोग दूर होता है । इससे बल, वीर्य्य बढ़ता है । सुश्रुतोंक यह घृत परम रसायन है ।

द्राक्षादिघृत—मुनक्का काली एक सेर, मुलेठी आध सेर, जौ कुट कर ६ सेर पानी में औंटाओ जब १॥ सेर रहे ह्यान कर उसमें मुलेठी ४ तौला मुनक्का ५ तौला पीपल छोटी ८ तौला का बल्क बना घी १ सेर दूध ४ सेर डाल पचावे । जब घी मात्र शेष रहे तब ह्यान कर मिथी आध सेर को पीस कर ह्यने भये घी में मिलावे यह द्राक्षादि घृत क्षय, उरः क्षत, खांसी, कफ, नाशक और बल वर्धक है ।

अगलाद्यघृत—बकरे का मांस (सस्सी बकरा) ६। सेर १६ सेर जल में पचावे जब ४ सेर बाकी रहे तब एक सेर घी जीवनीयगण की औंरधियां छटांक २ भर ले कदक बना कर, पचावे जब घृत मात्र शेष रहे तब ह्यान कर शहत पांच भर, मिलावे । यथा शक्ति मात्रा देवे । इस से क्षय, उरःक्षत, कास श्वास, पार्श्वशूत, अरुचि, स्तभंग, हृदयरोग दूर होते हैं जो लोग

धिलायती मक्खली का तैल सेवन करना पसन्द करते हैं ये एक आयुर्वेदीय घृत को सेवन करें अनुभव से जाना गया है कि यह घृत मक्खली के तैल से अधिक घल घर्षक और क्षयरोग नाशक है ।

चन्दनादि तैल— चन्दन सफेद, नेशवाला, नख, छूट, मुजेठी, मज्जीठ, पदमारु, छार क्यीला, कस, देवदार, कायफत्र भंवेज घास (पूतकेशर) तेजपात, इलायची छोटी, वालकड़, कफोज, फूलप्रयंगु, मोथा, इल्दी, दाकइल्दी, सारिया दोनों, कुटकी, लोंग, केशर अमर, दाजचीनी, रैजुका, ये प्रत्येक तीन २ तोला और दही का तोड़ बीस सेर तैल ५ सेर लाख का रस ५ सेर, सब को एकत्र कर पचावे जब तैल मात्र शेष रहे तब छान ले इस तैल के मर्दन से घल घटता है शरीर कान्तिमान होता है तब रक्त पिण्ड नष्ट होते हैं । धातुओं में प्रविष्ट दुग्धा ज्वर बाहर निष्काशना है ।

चन्दनादि तैल—में जो लाख का रस लिखा है वह इस प्रकार बनाना चाहिये कि लाख २॥ सेर सज्जी आधपाव सुशाना आध पाव लोघ आध पाव बेरकी पत्ती ५= सब को जौकूट कर पीप भर पानी में धौटाघो जब ५ सेर रहे छान लो यही तैल का रस है ।

चागलाद्यघृत—में जो जीवनीयमशु है उसकी औषधियां यह हैं जीवक, क्षयभक्त, मेदा, काशीजी, मुजेठी मापवर्षी, मुत्रपर्षी, जीवन्ती, जीवक, क्षुपभक्त के अभाव में गिलोइ वंशकोचनं मेदा के अभाव में अस्तमंश और दाकोली के अभाव में सिताघरवनी चाहिये ।

अश्व गन्धादि तैल — असगंध, खिरेटी, जाख, ये तीनों एक २ सेर ले जौड़ कर एक द्रोण (१६ सेर) पानी में भौंटावे । जब चौथाई पानी शेष रहे तब छान कर तैल तिलका १॥ सेर वही का तोड़ ६ सेर और असगंध, हल्दी, दाखदन्दी, रेनुका, कूट, मोथा, चन्दन, देवदार, कुटकी, सितावर, व्याख, मूर्या, पीपरामूल मजीठ, मुळेटी, घस, सारिषा, ये प्रत्येक औषधियां पौने दो दो तोले ले बल्क बनाकर सब को घग्नि पर रख पचावे जब तैल मात्र शेष रह जावे छानले । इस तैल की मालिश से बध्मा, ज्वर, वास, श्वास, दूर होत हैं घातुओं की वृद्धि होनी है ।

लक्ष्मी विलास तैल—इलायची, चन्दन, रास्ना, जाख, नख, वपुग, कंकोज, मोथा, खिरेटी, दालचीनी, हल्दी, पीपळ छोटी, अमर, तगर, जटामांजी, कूट ये प्रत्येक औषधियां एक २ तोला और काली रार ३ तोला ले, समक यन्त्र से तैल निकाल ले । यह तैल मुगंधयुक्त है पान में जगाकर सेवन करने से कफ को दूर कर जठराग्नि सो दीप्त करे और शरीर से मालिश करने पर सय, बवासीर को नष्ट कर स्त्रीपुरुषों में प्रीति उत्पन्न करे ।

द्राक्षारिष्ट—मुनक्का २०० तोले ले ३२ सेर पानी में भौंटावे जब ८ सेर पानी शेष रहे तब छान कर १२॥ सेर गुड़ डाले और दालचीनी, इलायची छोटी, तेजपात, नागेशर, फूल प्रयगु, काली मिर्च, पीपर छोटी, वायविडग, ये आठ औषधियां चार २ तोले डाल कर चिकने बासन में भर मुख बन्द कर एक मास रफखा रहने दे । १ मास पश्चात् ताप कर घातकों में भरले । यह अरिष्ट कफ को निकालने वाला, फेफड़ों को खाफ, और पुष्ट करने वाला, काम नाशक, वज्र वर्धक, और सय नाशक है ।

द्राक्षारिष्ट—में घनेक दैच घाव के फुल, मुनक्कों से चौथाई भाग डालते हैं

वज्रलासिष्ट—प्रयुक्त की छाल २ तुला (अर्थात् १२॥ सेर) को जोड़कर कर ६४ सेर पानी में औंठ(ओ), जब १६ सेर रहे छान कर १८॥ सेर गुड़ डाले और घास के फूल ६४ तोले पोपल छोटी ८ तोले, तथा जाय फल, फंकोल, लोंग, इलायची छोटी, राजचोनी, तेजपात नागकेशर, काली मिर्च, ये सब औषधियां वार २ तोले ले । सब को चिकने घासन में भर कर मुख बन्द कर एक मास रखना रहने दे । १ मास पश्चात् साफ़ कर बोतलों में भरले यह अरिष्ट— कफ को निकालने वाला, दस्त को बांधने वाला कास नाशक है ।

दशमूलासिष्ट—दशमूल २०० तोले चीते की छाल १०० तोले पोदकर मूल १०० तोले लोध ८० तोले, गिलोइ ८० तोले, आमले ६४ तोले, जवासे की जड़ ४८ तोले खैरखार ३२ तोले, विजेसार ३२ तोले हड़कादकल ३२ तोला कूट, मजीठ देवदार, बायबिड़ंग, मुलंठी, मारंगी, कैण, बहेड़े का बकल, सांठीकीजड़, चवप, बालकड़, प्रियंगु, सारिया, कालाजीरा, निशोध, रेनुका, बाय सुरई, पोपलछोटी, सुपारी, कचूर, हल्दी, खोंफ, पदमास, नागरकेशर, मोथा, इन्द्रजो, कावड़ासिंगी, ये औषधियां घाठ २ तोले और अष्टवर्ग ६४ तोले ले, सब को जोड़कर छठगुने जल में काय करे जब चतुर्थांश रहे । तब छानले, फिर सुतकश २५६ तोले ले चौगुने जल में पचावे जब चतुर्थांश शेष रहे तब छान कर ऊपर के काय में मिलादे । और घास के फूल १२० तो० शीतलचोनी, दस, चन्दन सफेद, जायफल, लोंग दालचानी, इलायची छोटी, तेजपात, नागकेशर, पोपलछोटी, ये सब घाठ घाठ तोले और करतूरी ४ माशे डालकर चिकने घासन में भर । मुख बन्दकर एक महीना धरा रहने दे पश्चात् छानकर निर्मली डाल साफ़ कर बोतलों में भरले यह अरिष्ट घात प्रधान लयके लिये तथा नज्ज-का प्रतिश्यायक लिये अति लाभदायक है तथा रक्त बर्धक है ।

वांसारिष्ट—वांसे के पत्तों का स्वरस १०० तोला मृत्-
संजीवनी सुरा १०० तोले मुलेठीकासन्य २ तोला कपूर १ तोला
अफीम १ तोला भारगी १ तोला बहोरेफायरुल २ तोला लौंग
२ तोला जायफन १ तोला इलायची छोटी २ तोला, मिचकारी
१ तोला तालीसन्य २) का रुड़ासिमी १) मिश्री ४० तोला इन सब
औषधियों को जो हुट कर चिकने घासन में भर मुष्कबन्दकर
१ महीना रक्खा रहने दे। पश्चात् धुान कर साफ करके
बहु अरिष्ट बड़े हुये कफ को नष्ट कर खांसी को दूर करता है
तथा क्षय, ज्वर, प्रतिश्याय को नष्ट करता है।

चित्तचन्द्रासव—मोथा, मिचकारी, चब्य, चीते की
की झल, हत्ती, घायबिडग, आमरे, खम, द्वारद्वीला, सुपारी,
लोघ, तेजपान, धर्तिलघन, चन्दन सफेद, तगर, घालझड़, दे-
वदान, दाम्ब्रीनी, गौरी, नासकदार, ये अरिष्ट औषधियाँ घाठ २
मासे ले और धायफूल ४० तोला मुगका ५० तोला गुड़पुरानो
१५ मेर जल २६ सेर डर चिकने घासन में भर मुष्क बन्द कर
एक मास रक्खा रहने दे पश्चात् धुान साफ कर दोनों में भर
रक्खे। यह चित्त चन्द्रामय सिद्धमैपज्यमणिमाता में मुद्रित है
और कफ काश क्षय नाशक और घनघर्षक है।

वांसारिष्ट—मैपज्यरत्नावली में लिखा है। किन्तु
इस में मृत्संजीवनी सुरा और वांसेरास्य रस आदि २-१- औ-
षधियाँ हैं पर हमारे औषधालय में उपररक्त विंशत्य औषधियों
धुान बनाया जाता है वही सर्ष राघरस्य के नाम व लिये प्रका-
शित कर दिया है वेच महानुभावों से प्रार्थना है कि वह वांसा-
रिष्ट बना अपने रोगियों को दे इस के नाम दो दें। मृत्संजी-
वनी सुरा मसिद्ध है " " आदि " " है

सृगांकपोटलीरस—पारा १ भाग स्वर्ण के चर्क १ भाग मोती २ भाग गंधक शुद्ध २ भाग, सुहागा चौथाई भग। प्रथम पारा धौर स्वर्ण के चर्क छोटे जब स्वर्ण के कण न चमकें तब मोती डाल कर छोटे जब सूत्र घाटीक हो जावे तब गंधक सुहागा डाल कर छोटे और जब सत्र एक हो जावे तब कांजी डाल दो पहर छोटे कर टिकिया बना सुपानोपश्चात् सरार समुष्ट कर लक्षण से पूर्ण किये दुधे वर्तन के बीच में रख ५ पहर की अग्नि दे स्वांग जीतज होने पर निराक्षे। यह सृगांक पोटलीरस उर अवस्था में देना चाहिये जब कि ज्वर, वासमन्दाग्नि, प्रदग्नी, के साथ में दिवंगता अधिक हो। इस समय देने से बड़ा लाभ देता है।

स्वर्णमालतीवसंत—स्वर्ण के चर्क, १ माशा मोती २ माशा काली मिर्च चुली भर ३ माशा शुद्ध सिद्धफ ४ माशा चर्च शुद्ध ५ माशा (अभाव में चशद भस्म) गाय की लोनी ६ माशा सब को चरल कर घाटीक करले पश्चात् नीचूषा रस डाल चरल करे। जब तक गाय की लोनी की चिकनाई नष्ट न हो जावे तब तड़ नीचू का चर्क डाल घोटवा रहे। जब चिकनाई न रहे तब टिकिया बना सुधाते। यह सर्व प्रकार के ज्वर को हय को श्वास कफ को नष्ट कर घल बढ़ाती है।

वसंत कुसुमाकर—प्रवालमरम, रत्नसिन्दूर, मोती, धस्रक मरम चार चार माशे, रौप्यमरम, स्वर्णभरम, दोदो माशे, लोह-मरम, नागमरम, घंगमरम तीन तीन माशे ले। सब को मिला चरलकर अहूसे के पतोंका सरस, हरी का काय, ईस का सरस

स्वर्णमालती वसंत में आज कल अनेक वैद्य अच्छा घ भल्लजी सर्पर न मिलने से शुद्ध चशद भस्म डालते हैं।

कमल के फूलों का स्वरस, मालती के फूलों का स्वरस, बेला की जड़कास्वरस, भगर का काथ, चन्दन लफेद का काथ इन औषधियों की अलग २ सात २ भावना देवे। यह अंशत पुसु-माकर रस उस अवस्था में प्रति लाभ देता है जब कि क्षय के साथ वीर्य विकार हो, कास के साथ कफ की अधिकता हो, शूलहीन हो।

राजसृगाङ्गरस—पारे की भस्म (रस सिन्दूर) ३ भाग स्वर्ण भस्म १ भाग ताम्रभस्म १ भाग मतसिज २ भाग शुद्धगंधक २ भाग हस्ताल २ भाग खर को धारिक चूर्ण कर पीली बड़ी कौड़ियों में भर, बकरीकादूध और सुद्रागा पीस कौड़ियों का मुख बन्द कर लुथाये। सुधाने के पश्चात् मट्टी के घर्तन में रस उस का मुख बन्द कर गजपुट में फूँदने स्वांग शीतल होने पर मट्टी के घर्तन को अलग कर कौड़ियों सहित रस को पीसने यही राजसृगांकरस है। अनुमान कालीमिर्च पीपल, घी, शहद, यह रस कफनाश क्षय के लिये प्रति लाभदायक है।

अमृतेश्वर रस—पारे की भस्म (रस सिन्दूर) गिलोह का, संतद, लोहभस्म, इन तीन औषधियों को समान भाग मिलाने से ही अमृतेश्वर रस बनता है यह रस उन अवस्था में जब कि क्षय का साथ अशक्त विचार हो लाभ देता है।

हेमगर्भ पोटली रस—शुद्ध पारा एक तोला स्वर्ण के बक ३ मात्रा गंधक शुद्ध २ ॥ तोला ले। पचाने के रस में खरल कर गोला बनाय करार अशुद्ध में बन्द कर कपड़ मिट्टी कर सुखा-पर भूषण चन्द्र में पचावे स्वांग शीतल होने पर निहाल उसके समान शु० गंधक मिट्टा अद्रक के स्वरस और चित्रक की जड़

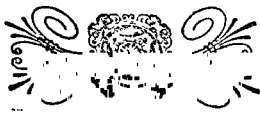
के काथ में भर बना देकर सुखाकर पीसले फिर पीली बड़ी कौड़ियों में भर सब औषधियोंसे छाया भाग सुहागो और चौथाई भाग सी-गिया ले दोनों को चूहर के दूध में पीस कौड़ियों के मुखों को बन्द कर दे। और एक हांडी ले उस में छाया चूना (कलई) भर कौड़ियों का रख फिर चूना भर हांडी का भर दे और हांडी का मुख बन्द कर गजपुट की अग्नि दे जब शीतल हो जावे तब सावधानी से हांडी में से कौड़ियों को निकाल खरळ कर शीशी में भर रखे । यह हेम गर्भ पोटली रस कफ प्रधान लय में दे । हेम गर्भ पोटली रस की सेवन विधि व पथ्य वृ० लोकरनाथ रस के समान है ।

तथा इस में भी विशेषता यह है कि ३ दिन अधिक निमक न पाय जब इस औषधि से उलटी (वमन) होने लगे तब गिलोह का काथ शहत डाल के देवे इस से उलटी घाना बन्द हो जाती है । कफ का अधिक प्रकोप हो तो शहत और अद्रक का रस मिला कर दे दस्त होने लगे तो भांग को घी में भून दही मिलाकर देवे, तो दस्त बन्द हो । यह रस कफ प्रधान तथा वायु प्रधान लय को नष्ट कर अग्नि को प्रदीप्त करता है ।

वृ० लोकरनाथरस—बुद्धित वारा २ भाग शुद्धधिक २ भाग ले कजली कर पारे से चौथुनी पीली कौड़ियों को ले उस में कजली भर दे । और सुहागा १ भाग ले गौंकेदूध में पीस कौड़ियों के मुखा को बन्द कर दे फिर शंख के टुकड़े ५ भागले और मिट्टी के दो सखा ले एक में चूना भर के उस के ऊपर शंख के टुकड़ा रख कौड़ी रख ऊपर ले फिर शंख के टुकड़ रख फिर चूना दाप २ के भर सखा डक दापड़ मिट्टीकर एक हाथ के गड्डे में धारने कण्डा भर बीच में समुष्ट को रख अग्नि दे । स्वांग शीतल हो ने पर चूना से कौड़ियों को व शंखाको निशाल परत में घोटकर

शोशी में भरले । इस घृ० लोक नाथरस की मात्रा १ एक रत्नी से
 ६ रत्नी तक है । १९ कालोमित्र के चूर्ण में मित्रा वात प्रधान क्षय
 में घी के साथ पित्रा प्रधान क्षय में मक्खन के साथ और वफ
 प्रधान क्षय में शहन के साथ दे । तथा अतिसार, ज्वर, अलसि, संग्रहणी
 मन्दाग्नि सांसी, श्वास, गोजा, इनने रोगों में भी इस रस को दे । इस
 को सेवन करघी भात के ३ घास खाय । फिर शय्या पर बिना बिद्वेषा
 के एकक्षय मात्र चित लेट जाये । स्रष्ट पदार्थ त्याग कर घृन से
 भोजन करे । तथा उराम मोटा दही भोजन में खाय । सायंकाल
 में जब भूय लगे तब दूध भात खाय । त्रिज घामले इनका कदक
 करके शरीर में मालिश कर के रनात करे । स्नान को जळसुदाता २
 गरम लेये । तेठ का स्पर्श भी न करे । पथ से रहे । शुभ दिन
 शुभ पार पूर्ण तिथि शुक्र पक्ष और जित दिन रांगी को अट्टा
 चन्द्रमा हो उस दिन लोक नाथ रसकी पूजा करे । इन्या दो
 भोजन करा, स्वर्ण आदि का दान दे, लोकनाथ रस का सेवन करे ।
 और विशेष विनयण घृह्दनिबंदुत्ताकर, शारंगवर आदि ग्रन्थों
 में देखिये ।

✻ समाप्त ✻



श्रीमान् लाल नारायणदास राधावल्लभ जी
 वैद्यराज के श्रीधन्वन्तरि औषधालय की



नाम औषधि	तोला	मूल्य
करञ्ज स्वर्णघटित पञ्चगुण बलजारित	१ तोला ...	१५)
सर्षप सिन्दूर	१ तोला ...	६)
ससिन्दूर	२॥ तोला ...	४)
हृत्सिन्दूर	१ तोला ...	४)
गोक्षरमस (स्वर्ण मोती की मिश्रित मस)	६ माशे ...	२५)
सर्षपमस-(पारदयोग से निरूप)	३ माशे ...	१५)
व्य मस-पारद योग से "	१ तोला ...	४)
" हरिताल योग से कृष्ण वर्ण	२ तोला ...	४)
खमस-पारद योग से	२ तोला ...	२)
" गंधक योग से कृष्ण वर्ण	५ तोला ...	१)
दन्ती हरिताल मस ...	५ तोला ...	१)
दि मस (दरदयोग से) ...	५ तोला ...	२)
" साधारण ...	१० तोला ...	२)

अमूरु भस्म (शुतपुटी) ...	५ तोला ...	५)
" (२५ पुटी) ...	१० तोला ...	४)
चंगेश्वर-(हरिताल योग से कृष्णवर्ण)	५ तोला ...	३)
चंगभस्म श्वेत ...	१० तोला ...	३)
नागेश्वर-(मन्दिशत योग से कृष्णवर्ण)-	५ तोला ...	३)
नागभस्म-पीतवर्ण ...	१० तोला ...	२॥)
त्रिवंगभस्म-(नाग, बशद, चंग की मिश्रित भस्म) ...	५ तोला ...	२॥)
स्वर्ण चंगभस्म ...	१ तोला ...	२)
यशदभस्म ...	१ तोला ...	२)
प्रवालभस्म (मृंगाकी भस्म)	५ तोला ...	२)
मांडूर (कीट) भस्म (रक्तवर्ण)	५ तोला ...	१॥)
" कृष्णवर्ण	१० तोला ...	२)
मालतीवसंत-यशदभस्ममिश्रित	१ तोला ...	६)
वसंत कुशुमाकर ...	३ मासे ...	५)
चन्द्रप्रभावटी-(लोहभस्मशिजाजीत मिश्रित) }	२० तोला ...	५)
पृ० योगराजगुग्गुल (सतधातुमिश्रित)	२० तोला ...	५)
योगराजगुग्गुल ...	५०० गोली ...	१॥)
प्रवाल पंचामृतसरस ...	५ तोला ...	१॥)

उपरोक औषधियों के प्रतिरिक्त और भी धातु उपधातुओं की भस्म, रस, गुटिका उपरतन प्रादि भी तैयार हैं ।

❧ अवलेह ❧

च्यवनप्राश्य (कास, राय, रक्त पिस्त, नाशक) १ सेर... ३

कुशावलेह, वांसावलेह, कुर्मांडावलेह, कंटकार्पावलेह आदि
दावलेह, प्रत्येक तीन २ रुपये सेर ।

❀ अरिष्ट और आसव ❀



सृगमदासव (रुन्निपात-विशूचिका रोग नाशक)	पाचसेर	४)
जोहासव (पांडु-शोथ-गुल्म आदि नाशक)	एकसेर	३)
कूर्पूरासव (विशूचिका शूल-आदि नाशक)	१ सेर	५)
अहफेनासव (प्रवाहिका-अतोषार विशूचिका आदि नाशक)	पाचसेर	३)
कुमारी आसव (शुक्ल, टीवोंके क्रतुदोषादि ना०)	पांचसेर	२॥)
वनकासव (कास, श्वास, रुफ आदि नाशक)	५ सेर	२)
षसीरासव (रक्त पित्त-क्षय-आदि नाशक)	५ सेर	२)
दशमूलारासव (प्रसूतदोष नाशक-वज्रवर्धक)	२ सेर	३)
चन्दनासव (मूत्रविकार, मूत्रवृद्ध-नाशक)	५ सेर	२॥)
षांसारिष्ट-(कास, श्वास, क्षय नाशक)	१ सेर	५)
असोडारिष्ट(प्रदर स्त्री रोग नाशक)	५ सेर	३)
सारस्वतारिष्ट (सर्गवटित) मस्तिष्कशक्ति स्मृतिशक्ति वर्धक और धीर्य दाय नाशक	पाचसेर	५)
द्राक्षारिष्ट (क्षय-काल-रुदिक उपर नाशक)	३ सेर	२५)

उपरोक आसव अरिष्टों के प्रतिरिक्त और भी आसव-अरिष्ट
लेयाए रहते हैं जमे असुतारिष्ट, कुटजारिष्ट, अम्भयारिष्ट आदि
अरिष्ट आसवों के साथ जां खोलके या तीन के टिप्पेयादि जांये
उन या मूत्र्य प्रादरों को प्रघट्ट देना होगा ।

अमूक भस्म (शतपुटी) ...	५ तोला ...	५)
" (२५ पुटी) ...	१० तोला ...	४)
योगेश्वर-(हरिताल योग से कृष्णवर्ण)	५ तोला ...	३)
वंगभस्म श्वेत ...	१० तोला ...	३)
नारेश्वर-(मन्दिशाल योग से कृष्णवर्ण)-	५ तोला ...	३)
नागभस्म-पीतवर्ण ...	१० तोला ...	२१)
त्रिवंगभस्म-(नाग, बशद, घंग की मिश्रित भस्म) ...	५ तोला ...	२१)
स्वर्ण वंगभस्म ...	१ तोला ...	२)
यशदभस्म ...	१ तोला ...	२)
प्रवालभस्म (मूंगाकी भस्म)	५ तोला ...	२)
माँहूर (कीट) भस्म (रक्तवर्ण)	५ तोला ...	१)
" कृष्णवर्ण	१० तोला ...	२)
मालतीवसंत-यशदभस्ममिश्रित	१ तोला ...	६)
वसंत कुशुमाक्षर ...	३ माथे ...	५)
चन्द्रमभावटी-(लोहभस्मशिजाजीत मिश्रित) }	२० तोला ...	५)
घृ० योगराजगुग्गुल (सतधातुमिश्रित)	२० तोला ...	५)
योगराजगुग्गुल ...	५०० गोली ...	१)
प्रवाल पंचामृतसर ...	५ तोला ...	१)

उपरोक्त औषधियों के अतिरिक्त और भी धातु उपधातुओं की भस्म, रस, गुटिका उपरतन आदि भी तैयार हैं ।

❧ अवलोक ❧

च्यवनमाशय (कास, घष, रक्त पित्त, नाशक) १ सेर... ३)

कुशापलेह, धांसाधलेह फुमांदाधलेह कंठकार्पावलेह आद्र-
दाधलेह, अन्ये ह तीन २ रुपये सेर ।

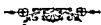
❀ अरिष्ट और आसव ❀



मृगमदासव (तन्निपात विशूचिका रोग नाशक)	पाचसेर	५)
लाहासव (पाण्डु शोथ गुल्म आदि नाशक)	दससेर	३)
कपूरासव (विशूचिका शूल आदि नाशक)	१ सेर	५)
अक्षफेनासव (प्रवाहिका अतीसार विशूचिका आदि नाशक)	पाचसेर	३)
हुमारी आसव (गुल्म, स्त्रीयों के ऋतुशोषादि ना०)	पाचमेर	२॥)
वनकासव (कास, श्वास, श्फक आदि नाशक)	५ सेर	२)
उसीरासव (रक्त पित्त-क्षय आदि नाशक)	५ सेर	२)
दशमूलासव (प्रसृतदोष नाशक-यजघ्नक)	२ सेर	३)
चन्दनासव (मूत्रविकार, मूत्रवृद्धि-नाशक)	५ सेर	२॥)
वासाशरिष्ट-(दास, श्याम, क्षय नाशक)	१ सेर	५)
असाशरिष्ट(प्रदर स्त्री रोग नाशक)	५ सेर	३)
सारस्वतारिष्ट (सर्पघटित) मस्तिष्कशक्ति स्मृतिशक्ति वर्धक और धीर्य दाय नाशक	आधसेर	५)
द्राक्षारिष्ट (क्षय दास-रक्तपित्त ज्वर नाशक)	३ सर	२५)

उपरोक्त आसव अरिष्टो क अतिरिक्त और भी आसव अरिष्ट तैयार रहते हैं जैसे अमृतारिष्ट, कुटुजारिष्ट, अभयारिष्ट आदि अरिष्ट आसवों के साथ जा बोलेंगे या टीन क डिब्बेआदि जागेने उन का मुख्य आसवों का प्रथम् वेना जाना ।

❀ तैल और घृत ❀



गारायण तैल-(सर्व प्रकार के घात रोग नाशक)	१ सेर	३)
विषगर्भ तैल (वायु त्रिकार नाशक)	२ सेर	४)
चन्दनादि तैल(क्षय कास-ज्वर नाशक)	१ सेर	३)
मौम का तैल (कण्ठज मौम का प्रसिद्ध तैल)	पाचसेर	२५)
लाक्षादितैल (जीर्णज्वर, विषम ज्वर नाशक)	२ सेर	४)
त्रिफलादिघृत (नेत्ररोग नाशक)	आधसेर	३)
सारस्वतघृत (बुद्धिवर्धक)	आधसेर	४)

उपर्युक्त तैल घृनों के अतिरिक्त और भी तैल तैयार हैं जैसे कुमारी तैल, षड्विन्दु तैल, किरातादितैल, मिर्चादितैल, प्राण्णोघृत, अग्निघृत, धातुघृत आदि ।

❀ चूर्ण ❀

सुदसंत चूर्ण (ज्वर नाशक)	१ सेर	३)
निम्बुआदि चूर्ण (ज्वर नाशक)	१ सेर	३)
घृः गणाधर चूर्ण (अनीमार-प्रदहो नाशक)	१ सेर	२)
जम्बूफलादि चूर्ण(क्षय प्रदहो आदि नाशक)	पाचसेर	१)
लावण भास्कर चूर्ण(मन्दाग्नि अजीर्ण आदि ना०)	आधसेर	२)

उपर्युक्त चूर्णों के अतिरिक्त और भी चूर्ण तैयार हैं ।



❀ सत्व-क्षार-द्राव ❀



गिलोह का सत्व	...	५ तोला	...	१७
अपामार्ग क्षार	...	२० तोला	...	१७
यषक्षार	...	२० तोला	...	२
इमली का क्षार	...	२० तोला	...	२
षडक्षार	...	१ तोला	...	१
संक्षारद्रावः	...	२ तोला	...	२७

इन के अतिरिक्त कटेरी, ढाक, आक, तमाखू, तिज, कदली, चित्रक आदि के क्षार तैयार रहते हैं।

❀ वनौषधियां ❀

दशमूल	...	५ सेर	...	७
माषपर्णी	...	छाधसेर	...	१
प्रक्षी	...	एक सेर	...	४
अमन्तमूल (शारिषा)	...	२॥ सेर	...	२७

इन के अतिरिक्त घौर भी वनौषधियां मिलती हैं।

नोट—जिस तौल का मूल्य लिखा है उस से कम थोक भाव में नहीं भेजी जाती हैं।

पता—मैनेजर श्रीधन्वन्तरि औषधालय नं० १५

पो० विजयगढ़ (अलीगढ़)

श्रीमान् ला० नारायणदास राधावल्लभजा वधराज
सम्पादक आरोग्य सिन्धु की

अनुभूत औषधि

क्षयज केशरी—यह क्षय रोग की प्रधान औषधि है। यह अनुपानमेद से क्षयरोग की प्रत्येक अवस्था के लिये अतिताम-दायक है। कफ, खाँसी, ज्वर, रक्तस्राव फ्लेफड़े की निर्धनता नाशक और घनयथक है।

हम इस की विशेष प्रशंसा न कर क्षय रोगियों से तथा वैद्यों से अनुरोध करते हैं कि इसे व्यवहार में ला इस के चमत्कारिक गुणों की परीक्षा करें।

(१५ रोज के सेवन योग्य औषधि का मूल्य ५)

नोट:—औषधि मगते समय रोगी क सम्पूर्ण लक्षण (हाल) ब्यारेखा लिखिये।

सब प्रकार की औषधियों के मिलने का पता—

बाँकेलाल गुप्त ।

श्रीधन्वन्तरि औषधालय नं० १५

विजयगढ़ ज़ि० अलीगढ़ ।